इस्लामी त्योहार और उत्सव

लेखक—

महेशप्रसाद

(मौलवी आलिम, फाजिल, हिंदू यूनीवर्सिटी, बनारस)

पुस्तक मिलने का पता—

आलिम फाजिल बुक डिपो

इलाहाबाद

प्रथम आवृत्ति] १९४८ ई०

विषय-सूची

मुहर्रम की विदअतें—उर्दू—प्रथम भाग—ले॰ नवाब सदरुद्दीन हुसैन खां रईस बड़ोदा—इस्लामी प्रेस पूना की छपी—पृ॰ सं॰ ३२—शेखअब्दुल्ला बिन मुहम्मद—अखबार तोहफा दक्षिण मोमिनपुरा पूना से प्राप्त।

अशरफुत्तकवीम सन् १३३५ हिजरी (सन् १९१६—१७ ई॰)—उर्दू ले॰ हाजी सैयद मुहम्मद मुर्तज़ा अली—प्र॰ मैनेजर इस्लामिया बुक एजेंसी मुरादाबाद—पृ॰ १५२।

इलमी जन्त्री सन् १९२३ ई॰—उर्दू—ले॰ तथा प्र॰ सैयद मुहम्मद अब्दुल्ला सौदागर कानपुर—पृ॰ ८०।

ग़म हुसैन और मुहर्रम की विदअतें—उर्दू—ले॰ अब्दुल्ला अमादी—प्र॰ मैनेजर वकील ट्रेडिंग बुक डिपो अमृतसर।

रहलत् इब्नबतूता—अरबी—ले॰ सम्सुद्दीन अबूअब्दुल्ल मुहम्मद इब्नबतूता—प्र॰ मालिक उमर हुसैनुलखशाब मिश्र—सन् १३२२ हिजरी अर्थात सन् १९०४ ई॰ पृ॰ संख्या ३०८।

अरबी लोग़ात फ़ीरोज़ी—प्रथम भाग—अरबी व उर्दू—ले॰ मुहम्मद फ़ीरोज़ उद्दीन—प्र॰ अतरचन्द कपूर अनारकली लाहोर—सन् १९०७ ई॰ पृ॰ सं॰ ४०४ प्रथम आवृत्ति।

फ़ारसी लोग़ात फ़ीरोज़ी—फारसी—उर्दू—ले॰ मुहम्मद फीरोज़ उद्दीन—प्र॰ रायसाहब मुन्शी गुलाबसिंह लाहोर—सन् १९१८ ई॰ पृ॰ सं॰ ४२६—पंचम आवृत्ति।

मर्द खबीस—फारसी—सम्पादक काज़ी फ़ज़ल हक़ एम॰ ए॰ प्रोफेसर गवर्नमेण्ट कालिज लाहोर—प्रकाशक मुबारक अली बुकसेलर लाहोरी दरवाज़ा के अन्दर लाहोर। सन् १९२१ ई॰।

सफ़रनामा मिश्र, शाम व रोम—उर्दू—ले० मौलाना शिबली, मुफीद आम प्रेस आगरा से मुद्रित। सन् १८६४ ई०।

तजकिरा हुसैनी—ले० मौलवी साहबजादा मुहम्मद इल्मुद्दीन कादिरी इल्मी, प्र० शेख गुलाम अली एँड सन्स ताजरान कुतुब काश्मीरी बाजार लाहौर सन् १९४६ ई०।

इस्लामी तकारीब—ले० मौलवी गुलाम दस्तगीर साहब प्रोफेसर निजाम कालिज हैदराबाद दक्षिण, प्र० इदारा इस्लामियात हैदराबाद, दक्षिण सन् १९४१ ई०।

हिन्दू कौम और अजादारी—ले० सैयद सिब्तुल हसन फाजिल हस्वी; मुद्रक सरफराज कौमी प्रेस लखनऊ सन् १९४२ ई०।

मोहर्रम और ताजियादारी—मुद्रक, नाजिर प्रेस लखनऊ सन् १३४६ हिजरी (सन् १९२७ ई०) द्वितीय आवृत्ति।

वाक़यात कर्बला ले० सैयद जामिन अली तृतीय आवृत्ति सन् १९४१ ई० बरकात अकबर प्रेस इलाहाबाद द्वारा मुद्रित।

Holy Places of Mesopotamia—English, Arabic and persian—(Illustrated)—printed and engraved by the superintendent, Government Press, Basrah Pages. 36

Dictionary of Islam—Engliib—by T.P. Hughe W. h. Allen and co Limited 13 waterloo plac S. W. (London)—1896 A. D.—Second edition. Pages 750.

— —

श्री. मि. मदनमोहनमल भण्डारी
को सप्रेम भेंट
लेखक
विजया दशमी २००६

जगत-विख्यात श्रीमहात्माजी

को

पुण्यस्मृति में

जिनके हृदय में इस्लाम के लिये

गहरा स्थान रहा है

लेखक

वक्तव्य

सन् १६२४ ई० में मैंने मोहर्रम व ताजिया के विषय में एक लेख लिखा था उसके पश्चात् लगभग पाँच वर्षों में भिन्न-भिन्न अवसरों पर मुसलमानों के अन्य त्योहारों के विषय में लिखा गया परन्तु पुस्तक रूप में सभी लेखों के छपने की नौबत अब आई है।

मेरा ख्याल है कि इस पुस्तक में जो कुछ लिखा गया है उससे केवल हिन्दुओं के ज्ञान ही में अच्छी वृद्धि न होगी बल्कि अनेक मुसलमानों व अन्य मतावलम्बियों के ज्ञान में कुछ न कुछ वृद्धि अवश्य होगी। इसके सिवा इस पुस्तक में कुछ आवश्यक बातें भी दे दी गई हैं और अनेक ऐसे ग्रंथों का पता बतला दिया गया है जिनके सहारे लोग और अधिक जानकारी विशेष रूप से प्राप्त कर सकते हैं निदान पुस्तक को यथासम्भव उपयोगी बनाने का भरसक प्रयत्न किया गया है।

मैं देखता हूँ कि जब मुसलमानों का कोई त्योहार आता है तो कुछ न कुछ लोग मुझसे उसके विषय में पूछा करते हैं। अतः पूर्ण आशा है कि विद्या-प्रेमी तथा जिज्ञासु लोगों को इससे यथोचित लाभ होगा।

हाँ, सम्भव है पुस्तक का दाम कुछ लोगों को अधिक प्रतीत हो, किन्तु पिछले कई वर्षों से कागज व मजदूरी की जो समस्या है उसके हिसाब से दाम वस्तुतः अधिक नहीं है।

हिन्दू यूनीवर्सिटी काशी
ज्येष्ठ बदी पंचमी २००५ वि०

महेश प्रसाद
मौलवी आलिम फाज़िल

कुछ पुस्तकों की सूची

इस पुस्तक से सम्बन्ध रखने वाली सभी बातें वास्तव में अनेक ग्रन्थों के आधार पर हैं। उन सभों के उल्लेख से सूची अवश्यमेव बहुत बड़ी हो जायगी। अतः केवल उन पुस्तकों की सूची दी जा रही है जिनकी आवश्यकता मैं विशेष रूप से समझता हूँ। सुगमता के विचार से पुस्तक के लेखक, प्रकाशक अथवा मुद्रक आदि का परिचय दिया जा रहा है ताकि जो लोग अधिक लाभ उठाना चाहें यथासम्भव लाभ उठावें और इस पुस्तक में जिन पुस्तकों का उल्लेख है उनके लेखक व प्रकाशक आदि का उचित बोध पाठकों को हो जाये।

फ़ातिमी दावत इस्लाम. उर्दू—ले० ख्वाजा हसन नज़ामी—प्र०, ख्वाजा बुक डिपो दिल्ली—सन् १३३८ हिजरी (सन् १९२० ई०) पृष्ठ संख्या २४० प्रथम आवृति।

मुहर्रम नामा उर्दू ले० ख्वाजा हसन नज़ामी—प्र० हलका मशायख बुक डिपो दिल्ली—सन् १९२३ ई०—पृ० सं० १२८—पंचम आवृत्ति।

तक़वीमुल् इस्लाम—उर्दू—ले० हकीम वकील अहमद सिकन्दरपुरी—प्र० 'मतबा आगरा' के स्वामी (आगरा से)—सन् १३१९ हिजरी (सन् १९०१ ई०)—पृ० सं० १३४ प्रथम आवृति।

मज़ाहिबुल इस्लाम—उर्दू—ले० मुहम्मद नजमुलग़नी खां रामपुरी—प्र० मैनेजर मुन्शी नवलकिशोर प्रेस लखनऊ—सन् १९२४ पृ० सं० ७६०, प्रथम आवृति।

हज़रत इमाम हुसैन साहब—उर्दू—ले० शेख आशिक हुसैन—प्र० अदुल् अलाई स्टीम प्रेस आगरा के मालिक—पृ० सं० ३२ प्रथम आवृति।

तारीख़ इस्लाम—चौथा भाग—उर्दू—ले० गुलाम क़ादिर फ़सीह स्याल कोटी—इस्लामिया स्टीम प्रेस लाहोर की छपी हुई। इसमें मुद्रण अथवा प्रकाश का समय अंकित नहीं है।

सच्चा हाल शहादत का इत्यादि—उर्दू—ले० शाह मुहम्मद अब्दुल्ला—प्र० मुहम्मद अब्दुल ग़फ़ूर मालिक कुतुब खाना अशरफ़िया कानपुर—सन् १३२५ हिजरी (सन् १९०७ ई०)—पृ० सं० ४८—प्रथम आवृति।

फ़लाह दीन व दुनिया—उर्दू ले० मौलवी मुहम्मद अली खाँ रामपुरी—प्र० सैयद मुहम्मद अनवार हाशमी ख्वाजा बुक डिपो दिल्ली—सन् १९२७ ई० पृ० सं० ५७६—तृतीय आवृति।

ओरुस अदब—उर्दू—ले० सय्यद नाज़िरुल् हसन 'होश' बिग्रामी—नगार मशीन प्रेस लखनऊ में छपी—सन् १९२७—पृ० संख्या २२४ प्रथम आवृति।

इस्लामी बड़ी तक़वीम—सन् १३४३ हिजरी (सन् १९२४—२५ ई०) बम्बई—उर्दू—ले० हकीम मुहम्मद ग़ालिब साहब—प्रकाशक क़ाज़ी नूर मुहम्मद बम्बई—पृ० सं० ७०—प्रथम आवृति।

सूफ़ी जन्त्री सन् १९१९ ई०—उर्दू—ले० मलिक मुहम्मद उद्दीन सम्पादक 'सूफ़ी'—प्र० कार्यालय सूफ़ी आम हयात पिण्डी बहाउद्दीन जि० गुजरात पृ० ६२—प्रथम आवृति।

इस्लामी त्योहार और उत्सव

मोहर्रम

सारे संसार के मुसलमानी राज्यों में कई प्रकार के [सन्] चलते हैं किन्तु सर्वमान्य सन् हिजरी है। हिजरी [शब्]द हिजरत से बना है। इसका [अ]र्थ[1] है कुटुम्ब से पृथक होना। [दे]श को छोड़ देना।

मोहर्रम क्या है ?

हज़रत मुहम्मद साहब अपने शत्रुओं के भय से अपने [ज]न्म स्थान मक्का नगर को सन ६२२ ई० में छोड़कर [म]दीना नगर में जा बसे थे। इसी के उपलक्ष में मुसलमानों [ने] अपने सन् का नाम हिजरी रक्खा। मोहर्रम इसी सन् [के] प्रथम मास का नाम है। मोहर्रम शब्द का अर्थ[2] है, [व]र्जित किया गया। मुसलमानी धर्म के प्रचलित होने से [पूर्व] इस मास में युद्ध करना ही वर्जित था इस कारण इस [मा]स का नाम मोहर्रम पड़ गया। परन्तु भारत में आज- [कल] यह बहुधा उस उत्सव के लिये प्रयुक्त है जो इसी मास [की] दसवीं तारीख को हज़रत इमाम हुसैन साहब की स्मृ[ति के] उपलक्ष में मनाया जाता है।

१ अरबी लोग़ात फीरोज़ी पृ० २६४।
२ अरबी लोग़ात फीरोज़ी पृ० २२२।

जिस प्रकार हिन्दू लोग चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, आदि बारह महीने मानते हैं, उसी प्रकार मुसलमान लोगों के यहाँ भी मोहर्रम, सफ़र, रबीउल्ल-अव्वल, रबी उस्सानी, जम्मदीउल अव्वल, जम्मदी उस्सानी, रजब, शाबान, रमज़ान, शव्वाल, ज़ीकाद, और ज़िलहिज्ज, नामक बारह महीने हिजरी साल के माने गये हैं।

मोहर्रम का महीना प्राचीन काल में शुभ समझा जाता था और अब भी वह एक पवित्र महीना है। इसका नाम सैय्यदुल-अशहर' है अर्थात् समस्त महीनों का राजा। मुसलमान लोग चन्द्रमा के अनुसार दिन, मास और वर्ष की गणना करते हैं। मुसलमान लोग द्वितीया का चन्द्रमा देखकर प्रत्येक मास की पहली तारीख निश्चित करते हैं और रात को दिन से पहले मानते हैं। उदाहरणार्थ यह जानना चाहिये कि सोमवार और मंगलवार के बीच में जो रात्रि पड़ती है मुसलमान लोग उसे मंगल की रात मानते हैं। एक सुप्रसिद्ध लोकोक्ति है—

"माहे मोहर्रम ज़रबवीं सूर: रहमान बरवाँ[२]।"

अर्थात्—मोहर्रम मास के प्रथम दिन का चन्द्रमा देख कर ज़र[३] देखो।

---

१ तक़वीम इस्लाम पृ० ४२।
२ इलमी जन्त्री सन् ९२३ ई० पृ० ११।
३ ज़र का अर्थ है—सोना, रुपया, अशरफी और पैसा आदि।

कुरान शरीफ़ की रहमान नामक सूरत[1] पढ़ो।

एक लेख[2] का आशय यह है—कि इस मास के प्रथम दिन का चन्द्रमा देखकर ज़र, सब्ज़ा (हरियाली), आभूषण, चांदी, फ़ीरोज़ा, रमणीय स्थान या मेवा आदि का देखना शुभ है।

परन्तु हज़रत इमाम हुसैन के शोक-जनक बलिदान के कारण कुछ लोग मोहर्रम के दिनों में शादी-विवाह करना बुरा समझते हैं और जो बच्चा इस मास में पैदा हो उसे ख़राब मानते हैं[3]।

प्राचीन अरब लड़ाई के पुतले थे। छोटी-छोटी बातों पर भी लाखों मनुष्यों का तलवार के घाट उतर जाना एक साधारण बात थी। रात-दिन मार-काट में ही लगे रहना उनके जीवन का एक स्वाभाविक अंग था। परन्तु उन्होंने वर्ष के चार मास ऐसे बना रक्खे थे जिनमें लड़ाई-भिड़ाई बिलकुल बन्द रहती थी। सारे अरब में अखण्ड शान्ति विराजती थी और उस शान्ति काल में सब लोग अपने

---

१ सूरत या सूरः का अर्थ है—कुरान शरीफ़ का एक टुकड़ा, भाग।

२ 'इस्लामी बड़ी तक़्वीम' बम्बई सन् १३४२ हिजरी—पृ० १०।

३ अशरफ़ुत्तक़्वीम सन् १३३५ हिजरी पृ० १२।

व्यापार आदि कार्य्य बड़ी सावधानी से करते थे। मोहर्रम भी शान्ति का मास था, परन्तु ग्रन्थों से ऐसा भी पता चलता है कि यदि अरब लोग शान्ति के निश्चित चार मासों में से किसी एक मास में शान्ति नहीं रखते थे तो लड़ाई जारी रहती थी। उसके बदले वे किसी दूसरे मास को शान्ति के अर्पण कर देते थे।

फारसी के कवि शिरोमणि ख्वाजा हाफिज शीराजी साहब लिखते हैं—

"बवीं हलाल मोहर्रम बख़ाह सागर राह।
कि माह अम्न व अमां अस्त व साल सुलह व सलाह।

अर्थ—मोहर्रम के महीने में द्वितीया का चन्द्रमा देख, और मदिरा के प्याले की इच्छा कर क्योंकि यह महीना शान्ति का है और वर्ष सुलह क्या है।

सन् ३. या ४. हिजरी में मदीना नगर में इमाम साहब का जन्म हुआ था। ये अपने बड़े भाई हज़रत

हज़रत इमाम हुसैन साहब

इमाम हसन साहब से साल-डेढ़ साल छोटे थे। जगद्विख्यात हज़रत अली साहब आपके पिता और हज़रत मुहम्मद साहब की पुत्री श्रीमती 'फ़ातिमा'[1] आप की माता थीं। सन् ६१

---

१ बीबी फ़ातिमा और हज़रत अली साहब की सन्तानों के मुसलमान लोग 'बनी फातिमा' कहलाते हैं। भारत में बनी फातिमा

हिजरी अर्थात् अकतूबर सन् ६८० ई० (५७ या ५८ वर्ष की आयु) में आप मारे गए। इसी बलिदान की बदौलत आप 'सैयदुश् शोहदा', 'शहीदे आज़म' के नाम से भी विख्यात हैं। इनके सिवाय 'शब्बीर, सैयद, 'तैयब, 'वली, आदि नाम भी आपके ही हैं। अनेक लेखकों का कहना है कि आप छाती या बोड़री से पाँव तक अपने नाना हज़रत मुहम्मद साहब के सदृश थे[1]। सन् ६३२ ई० में हज़रत मुहम्मद साहब मरे। उस समय इस विषय पर मतभेद हुआ कि मुसलमानों का उनके स्थान पर अब कौन खलीफ़ा हो। दो समुदाय हो गए—एक का नाम शीया—और दूसरे का नाम 'अहले सुन्नत वल् जमाअत' अर्थात् सुन्नी[2] हुआ। इन (सुन्नी) का कथन है कि सर्व्वसंमति या बहु सम्मति से जो खलीफ़ा निश्चित हो, वही खलीफ़ा हो। इस प्रकार हज़रत अबूबकर, उमर, उस्मान और अली साहब क्रमानुसार खलीफ़ा हुए।

के लिये 'सादात' या 'अहले बैत' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। परन्तु कुछ मुसलमानों में 'शरीफ़' शब्द भी प्रचलित है। फ़ातमी दावत इस्लाम पृ० ३।

१ (अ) हज़रत इमाम हुसैन साहब, पृ० ६।
(आ) सच्चा हाल शहादत का—पृ० ५।

२ मोहर्रम नामा ३।

किन्तु शिया लोग कहते हैं कि खलीफ़ा होने का हक़ वास्तव में हज़रत अली साहब का था। पहिले उक्त तीनों खलीफाओं ने अपनी नीति से हज़रत अली साहब का आदि हक़ ले लिया। अस्तु शीया लोग जिन बारह इमामों[1] को विशेष रूप में मानते हैं उनमें प्रथम हज़रत अली साहब, दूसरे हज़रत इमाम हसन साहब और तीसरे हज़रत इमाम हुसैन साहब हैं।

बहुतेरे लोग ऐसा समझते हैं कि मुहर्रम का जो झगड़ा हुआ है और जिसमें हज़रत इमाम हुसैन साहब

विरोधी कौन थे

तथा उनके साथियों या कुटुम्बियों पर जो आपत्तियाँ आई हैं, उनमें इमाम साहब के विरोधी लोग मुसलमान नहीं। अर्थात् किसी अन्य मत के अनुयायी थे। किन्तु यह बात ऐसी नहीं है क्योंकि विरोधी भी मुसलमान ही थे और उनमें कुछ ऐसे भी मुसलमान थे जिनको कि हज़रत मुहम्मद साहब के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त था, और जिन्होंने हज़रत मुहम्मद के समय में तथा उनके पश्चात इस्लाम की सेवाएँ की थीं।

---

१ इमाम शब्द का अर्थ है अगुआ, नेता व बादशाह। शिया लोग बारह इमामों को मुख्य मानते हैं इस कारण 'इसना अशरी' कहे जाते हैं। इसके सिवा शिया लोग 'इमामिया' भी कहलाते हैं और शिया शब्द का अर्थ है—समुदाय।

उक्त बात के सिवाय यह भी जान लेना चाहिए कि अरब में नज़र विन कनानः नामी व्यक्ति को कुरैश की उपाधि दी गई थी। फिर उसी के पौत्र कहर की सन्तान कुरैश कही जाने लगी और शनैः शनैः बाद को कुरैश घराने की बहुत सी शाखाएँ हो गईं। उन्हीं में से, जिन शाखाओं के उल्लेख की यहाँ आवश्यकता है. एक बनी हाशिम और दूसरी बनी उमैय्या[१] है। अतः पहिली शाखा के हज़रत मुहम्मद साहब, हज़रत अली साहब, और हज़रत इमाम हुसैन हैं। और हज़रत माविया या यज़ीद जो हज़रत अली साहब तथा इमाम हुसैन साहब के विरोधी थे— बनी उमैय्या नामक दूसरी शाखा के थे। निदान यह कि हज़रत इमाम हसन साहब के विरोधी भी कुरैशी ही थे जो कि अरब में सर्व्वश्रेष्ठ और बड़े प्रतिष्ठित तथा कुलीन माने जाते हैं।

एक इतिहासकार लिखता है—कई अवसर ऐसे पड़े थे, जिन पर बनी उमैया की शाखा के लोगों को बनी हाशिम के मुकाबिले में नीचा होना पड़ा था। इन कारणों से बनी उमैय्या के लोग बनी हाशिमवालों के कट्टर शत्रु

---

१ हाशिम और उमैया सगे चचा भतीजे थे। इन दोनों व्यक्तियों के नाम से बनी या बनू हाशिम तथा बनी या बनू उमैया नामक दो प्रतिष्ठित कुल मशहूर हुये।

हो गए थे। और वे लोग बनी हाशिमवालों की सदैव बुराई चाहा करते थे[1]।

यह बात अभी ऊपर बतलाई जा चुकी है कि हज़रत मुहम्मद साहब बनी हाशिम की शाखा में से थे। अब यह जानना चाहिए कि हज़रत मुहम्मद साहब ने जब इस्लाम का प्रचार किया तब बनी उमैया की शाखा के अबू सुफ़ियान नामी व्यक्ति तथा कुछ अन्य लोगों ने हज़रत साहब का घोर विरोध किया था[2]। और यथा-शक्ति हानि पहुँचाने में कोई कसर बाकी न रक्खी थी। परन्तु जब मुसलमान लोग बहुत शक्तिशाली हो गए, उनका पूरा अधिकार मक्का पर हुआ तथा अन्य विरोधियों ने मजबूरन मुसलमानी धर्म को स्वीकार किया और इस प्रकार द्वेष की आग जो बनी उमैया शाखावालों के हृदयों में प्रज्वलित थी उस पर पानी पड़ गया। किन्तु वास्तव में वह पूर्ण रूप से न बुझी क्योंकि उसी अग्नि के पुनः प्रचण्ड होने का ही यह फल है जो कि हज़रत अली तथा उनके अन्य कुटुम्बियों को नाना प्रकार के कष्ट पहुँचे। जिसकी स्मृति आज भी बड़े ज़ोरों के साथ मनाई जाती है।

---

१ तारीख़ इस्लाम—चौथा भाग पृ० ८७६ से ८७८ तक।

२ मोहर्रम नामा पृ० २ व ३।

सन् ६३२ ई० में हज़रत मुहम्मद साहब की मृत्यु के पश्चात् हज़रत अबूबकर साहब मुसलमानों के पहिले खलीफा माने गये। यह दो वर्ष के लगभग खलीफ़ा रहे और ६३४ में मरे। इन्होंने शाम देश पर आक्रमण करने के निमित्त जो सेना भेजी थी उसमें अबूसुफ़यान का पुत्र माविया भी अपने बड़े भाई के साथ गया था। शाम देश की विजय होने पर माविया का भाई वहाँ का उत्तराधिकारी बना था; किन्तु ६३९ या ६४२ ई० में अपने भाई की मृत्यु पर माविया ही वहाँ के उत्तराधिकारी बनाये गये और यह लगभग ४० वर्षों तक वहाँ के शक्तिशाली हाकिम रहे। इससे इनकी जड़ वहाँ मज़बूत हो गई।

विरोधियों की शक्ति-वृद्धि

हज़रत अबूबकर साहब के बाद हज़रत उमर ने लगभग ११ वर्षों तक राज किया था। इन के बाद हज़रत उस्मान लगभग १२ वर्षों तक खलीफ़ा रहे थे। हज़रत अबूबकर व हज़रत उमर कुरैशी थे किन्तु वे न तो बनी हाशिम की शाखा के थे न बनी उमैय्या की। और हज़रत उस्मान बनी उमैय्या की शाखा के थे। इन्होंने अपने राज-काल में बनी उमैय्या वालों के प्रति बड़ा पक्षपात दिखलाया था। माविया इनका सम्बन्धी था। इस कारण माविया की समस्त शक्ति शाम देश में बहुत ज्यादा ज़ोर पकड़ गई थी।

६५६ ई० में हज़रत उस्मान साहब के मारे जाने पर अनेक लोगों ने हज़रत अली साहब को अपना (चौथा) खलीफ़ा माना। किन्तु मोविया ने स्वीकार न किया। यह बात पहले बतलाई गई है कि हजरत अली साहब बनी हाशिम की शाखा के हैं और मोविया बनी उमैया शाखा से। अस्तु दोनों शाखों में द्वेष की अग्नि जो पहले मानों बुझ गई थी वह फिर भड़क उठी। बड़े-बड़े झगड़े बखेड़े हुये। अन्त में यह निश्चय हुआ कि शाम तथा उसके पश्चिम के मुसलमानी राज्य का उत्तराधिकारी माविया को माना जाय और पूर्व का बाकी राज्य हज़रत अली साहब के अधिकार में रहे।

सन् ६६१ ई० में हज़रत अली साहब कूफा में मारे गये। उनके स्थान पर बहुत से लोगों ने उनके पुत्र हज़रत इमाम हसन साहब को खलीफ़ा माना। परन्तु अमीर माविया ने उन पर आक्रमण किया। वह साधु-स्वभाव के थे। लड़ाई-झगड़ा बिल्कुल पसन्द न करते थे। अस्तु आप ने अमीर माविया के पास निम्न लिखित आशय का सन्देश[1] भेजा:—

(१) आपके पश्चात् खिलाफत मेरे (तथा मेरे कुटुम्ब के) निमित्त हो।

---

[1] तारीख इस्लाम—चौथा भाग—पृ० ६५६।

(२) इराक़ (मैसोपोटामिया) और हजाज़ (अरब) देशों की आय मेरे खर्च के निमित्त रहे।

(३) मेरे पिता के ऋण चुकाये जावें।

अमीर माविया ने उक्त शर्तों को सहर्ष स्वीकार किया। इसके अनुसार इमाम साहब ने खिलाफ़त त्यागी और वह सारे इस्लामी संसार का बादशाह माना गया।

हज़रत इमाम हसन साहब लगभग ६ मास तक ही खलीफा रहे। सन्धि हो जाने पर मदीना में ईश्वर-भक्ति में जीवन व्यतीत करने लगे। किन्तु अमीर माविया (या माविया पक्ष के किसी अन्य शत्रु) ने आपकी जाद: या असमा नामी धर्मपत्नी के द्वारा आपको विष दिलवा दिया[1] जिससे सन् ६७० ई० (४६ वर्ष की आयु) में आपकी मृत्यु हुई।

अमीर माविया की मृत्यु सन् ६७९ ई० (७७ या ८० वर्ष की आयु) में हुई। उपरोक्त सन्धि के अनुसार अब हज़रत इमाम हुसैन साहब खलीफ़ा होते। पर अपनी मृत्यु से पहले ही अमीर माविया ने बहुतों से यह प्रतिज्ञा करा ली थी कि उनके पश्चात् उनके पुत्र यज़ीद को ही लोग खलीफ़ा

झगड़े की जड़

१ मोहर्रमनामा—पृ० ४४.

२ सच्चा हाल शहादत का—पृ० ८

मानेंगे। मुसलमान लोग पहले सर्व या बहुसम्मति जिसको चाहते थे अपना खलीफ़ा बनाते थे किन्तु बाप पश्चात् बेटे के ख़लीफ़ा होने की प्रथा अमीर माविया यज़ीद से ही चली है[1]। निदान अमीर माविया की मृ पर यज़ीद समस्त इस्लामी जगत् का खलीफ़ा बन बैठा पर कूफ़ा निवासियों ने हज़रत इमाम साहब को निमंत्रि किया और उनको अपना ख़लीफ़ा मानने की इच्छा प्रक की। इमाम साहब उस समय मक्का में थे। इस प आप अपने कुटुम्बियों तथा सहायकों सहित कूफ़ा (मैसे पोटामिया) की ओर चले।

हज़रत इमाम साहब के साथ में कुटुम्बी तथा अन लोग संख्या में बहुत कम थे[2]। ये सब लोग मैसोपोट मियाँ में फ़ुरात नदी के पास ही पश्चिम की ओर उ स्थान पर ठहरे जो कर्बला[3] के नाम से विख्यात है

---

१ मोहर्रम नामा—पृ० ८४.

२ हज़रत इमाम साहब के ७२ व्यक्ति कुटुम्बी थे और १४ कुल फौजी थे—मोहर्रम नामा पृ० १०५. । परन्तु संख्या के विष में बड़ा मतभेद है॥

३ कर्बला में इमाम साहब संभवतः मोहर्रम की पहली को पहुँ गये थे और शत्रुओं ने नदी के जल पर सातवीं मोहर्रम से क पहरा लगाया ताकि इमाम साहब के साथी पानी न ले सकें।

—हज़रत इमाम साहब—पृ० २७ व २८

यहाँ कूफ़ा में इनका कोई सच्चा सहायक नहीं था। इसी समय यज़ीद की ओर से ओवैदुल्ला बिन ज्याद कूफ़ा में इमाम साहब के मुकाबिला में आया। उसने उमरबिन साद को चार हज़ार सवारों के साथ भेजा। इन लोगों ने इमाम साहब का खेमा घेर लिया और फ़ुरात नदी की ओर आना जाना अर्थात् वहाँ से पानी लेना बन्द कर दिया, इससे कुटुम्बियों और साथियों को बड़ा कष्ट हुआ। आपने निपटारे की कई शर्तें शत्रुओं के सम्मुख रक्खीं; परन्तु एक भी कारीगर न हुई। अन्त में आपने यहाँ तक भी कहा कि मेरे बाल-बच्चों को कष्ट न दो। मेरे साथियों को न मारो—केवल मुझे ही मार करके झगड़े को सुलझा लो। जब शत्रु इस बात पर भी राज़ी न हुए तब आपने अपने साथियों से कहा कि तुम लोग जान को ख़तरे में न डालो। परन्तु किसी ने भी आपका साथ छोड़ना पसन्द न किया। और सबके सब बड़ी वीरता और धीरता से रण-क्षेत्र में काम आए।

भयानक युद्ध

पहिले दोनों ओर से एक एक व्यक्ति के द्वन्द्व युद्ध हुए इसमें इमाम साहब के साथियों ने आश्चर्य-जनक कार्य्य कर दिखलाया, शत्रुओं के दिल दहल गए। फिर एक ने यह कूटनीति की कि थोड़ी सी सेना लेकर इमाम साहब के कुटुम्बियों

अर्थात् स्त्री-बच्चों की ओर बढ़ा, और उनसे छेड़-छ
करनी चाही। परन्तु इमाम साहब ने ललकार कर क
"मेरा तुम्हारा मुकाबला है, स्त्रियों और बच्चों को सत
से क्या मतलब, क्या वे तुमसे लड़ रहे हैं—जो तुम उ
छेड़ते हो?" ऐसा सुनकर शत्रुओं ने उनको छोड़ दिया अ
इमाम साहब को आ घेरा, घोर युद्ध शुरू हो गय
दूर से शत्रु लोग बाण बरसाने लगे, धीरे-धीरे इम
साहब के सब साथी मारे गए। अपने साथियों के म
जाने तक स्वयं इमाम साहब भी बहुत घायल हो चुके
इसके सिवाय जल का जो कष्ट था, उसके सम्बन्ध
कहा ही क्या जाए, किन्तु अपने धैर्य्य और शौर्य को ह
खो न जाने दिया। बड़ी वीरता के साथ घोड़े पर सव
होकर शत्रुओं की सेना पर टूट पड़े, बहुतों को म
गिराया। परन्तु विकट रूप से घायल होने के कारण अ
कब तक लड़ सकते थे; अन्त में शत्रु-दल के एक निर्द
ने निष्ठुरता के साथ तलवार से आपका सिर धड़
पृथक् कर दिया।

एक लेखक का कथन है[१] कि हज़रत इमाम सा
के शहीद होने के बाद कूफ़ा में ओबैदुल्ला बिनज्याद
और शाम में यजीद ने रोशनी सारे नगर में करा

१ सच्चा हाल शहादत का—पृ० ३१।

खूब वाजे वजवाए, नाना प्रकार के तमाशे देखे और वड़ी खुशियाँ मनाईं।

हज़रत इमाम साहब जब तक जीते रहे शत्रुओं की ओर से उन्हें नाना प्रकार के असहनीय दुःख पहुँचाए गए किन्तु मृत्यु के वाद भी उनके मृत शरीर तथा उनके बचे-खुचे कुटुम्बियों और साथियों के साथ भी शत्रुओं का जो व्यवहार हुआ वह भी कुछ कम दुःखमय नहीं है[1]। कहा जाता है कि हज़रत इमाम साहब की शहादत के बाद शत्रु खेमे में आए। वहाँ कुल १२ व्यक्ति जीवित थे—जिनमें ग्यारह स्त्रियाँ और लड़कियाँ थीं—केवल इमाम जैनुलआबदीन साहब पुरुष थे। उनकी आयु उस समय २३ वर्ष की थी। वे इमाम साहब के पुत्र थे किन्तु बीमारी के कारण नहीं लड़े थे। ये सभी कैद कर लिए गए।

सारा सामान लूट लिया गया। सारे कैदी और शहीदों के सिर नेज़ों पर रख कर कूफ़ा भेजे गए। कूफ़ा पहुँचने पर ओबैदुल्ला इब्नज्याद की आज्ञा से सबसे पहिले शहीदों के सिर नेज़ों पर खोंसकर और सारे कैदी (स्त्रियों) बिना परदा के ऊंटों पर चढ़ा कर समस्त नगर

---

१ इमाम साहब के शत्रुओं का व्यवहार उनके कुटुम्बियों तथा साथियों के प्रति बड़ा निठुर और निन्दनीय हुआ है। सबका उल्लेख नहीं हो सकता। —लेखक

में फिराए गए। फिर दरबार में उसके सम्मुख पेश किये गए। उसने हज़रत इमाम साहब के सिर के साथ बड़ी अशिष्टता का वर्ताव किया। इसके बाद सारे कैदी और सिर यज़ीद के पास दमिश्क भेजे गए। वहाँ धूमधाम के साथ दरबार हुआ। बहुत से लोग एकत्र हुए फिर सभों को देख कर बहुत प्रसन्न हुआ। और हज़रत इमाम साहब के सिर और कुटुम्बियों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया।

कुछ लोग उसके दुर्व्यवहार को देख कर बहुत रुष्ट भी हुए। बाद को यज़ीद ने आज्ञा दी कि सारे सिर दमिश्क के दरवाजे पर लटकाए जाएँ। अस्तु आज्ञा का ठीक उसी प्रकार पालन हुआ। फिर तीन दिन के बाद सारे सिर और कैदी मदीने भेज दिए गए। वहाँ उन सबों के पहुँचने पर बड़ा भयङ्कर कुहराम मचा। बाद को हज़रत इमाम साहब का सिर उनकी माता और बड़े भाई की कब्र के पास गाड़ दिया गया।

हज़रत इमाम हुसैन साहब हज़रत मुहम्मद साहब की प्यारी पुत्री के पुत्र थे, और उन्हें बहुत ही प्यारे थे।

इस्लामी जगत् में हलचल

उस समय सैकड़ों जीवित व्यक्ति ऐसे थे जो भली भाँति जानते थे कि इमाम साहब को हज़रत अली साहब कितना प्यार करते थे। इसके सिवाय माविया और यज़ीद ने हज़रत

इमाम साहब के पूज्य पिता हज़रत अली साहब तथा भ्राता हज़रत हसन साहब के साथ जो सलूक किया था वह भी असन्तोष पैदा करने वाला था। इन सब बातों से हज़रत इमाम साहब की शहादत के समाचार ओबैदुल्ला बिनज्याद व यज़ीद आदि के दरबार के व्यवहारों से इस्लामी संसार में बड़ा कुहराम मच गया। यज़ीद का बड़ा जोर था, उसके भीषण अत्याचार का उदाहरण इससे बढ़कर और क्या हो सकता है कि हज़रत इमाम साहब आदि की बड़ी दुर्गति हुई। तथापि बहुत से लोगों को सारा दुर्व्यवहार असहनीय हुआ। कुछ लोगों ने खुल्लम खुल्ला यज़ीद के सामने ही उसे बहुत बुरा भला कहा। इस पर वे भी मारे गए। किन्तु सारे इस्लामी जगत् ने जो दुःख मनाया और जो अब मनाया जाता है उसे कोई भी न रोक सका।

कर्बला शब्द वास्तव में कर्ब और और बला अर्थात् दुःख और आपत्ति से बना है। कर्बला को आदर की दृष्टि से 'कर्बलाय मुअल्ला' अर्थात् उच्च अथवा श्रेष्ठ कर्बला भी कहते हैं[१]। इसके

कर्बला

१ इसी कर्बला के नाम पर भारत के अनेक स्थानों में मुसलमानों ने कर्बला नाम का एक स्थान नियुक्त कर रखा है। मुहर्रम के ताज़िया वहीं पर जाते हैं। अच्छे अच्छे ताज़ियों का थोड़ा सा अंश गाड़ दिया जाता है॥

सिवाय यह स्थान मशहद हुसैन अर्थात् हज़रत इमाम हुसैन साहब के बलिदान का स्थान भी कहा जाता है। कर्बला में इमाम साहब के साथियों पर जो बीता है—वह सबका सब वस्तुतः अति हृदय-विदारक है। केवल पानी के लिए ही वे इतने तरस गए कि बोलने की शक्ति तक उनमें न रही—विवश होकर वे इशारे से बातचीत करते थे। कहा जाता है कि इमाम साहब के एक भाई हज़रत अब्बास साहब बहुत प्यासे थे। फ़ुरात नदी के तट पर गए, पीने के लिए हाथ में पानी लिया, और वे पीने को ही थे, कि इतने में उन्हें इमामहुसैन साहब तथा बच्चों की प्यास याद आ गई। दोनों हाथों से पानी फेंक दिया, और पानी की मशक भरकर चले। इसपर शत्रुओं ने बाण चलाना आरम्भ कर दिया। मशक में छेद हो गए। सारा जल बह गया। तब हज़रत अब्बास साहब ने हज़रत इमाम साहब की सेवा में लौट कर निवेदन किया—कि तलवार के पानी के सिवाय फ़ुरात नदी का जल हमारे भाग्य में नहीं है।

कहा जाता है कि हज़रत इमाम साहब का सिर काट लेने के बाद उनकी लाश छोड़ दी गई थी। बीस सवारों ने घोड़ा दौड़ा दौड़ा कर टापों से उसे खूब रौंदा[२]। शत्रुओं ने अपने मृतकों की लाशों को तो गाड़ा, पर इमाम साहब और

२ सच्चा हाल शहादत का. पृ० २६।

उनके पक्ष वालों की लाशों को पड़ा ही रहने दिया। तीन दिन के बाद कर्बला के समीप एक ग्राम के निवासियों ने हज़रत इमाम साहब तथा अन्य लोगों की लाशों को गाड़ा।

एक लेख से ऐसा मालूम होता है कि हज़रत इमाम साहब का सिर दमिश्क से कर्बला को वापस भेज दिया गया था। और वह लाश के साथ ही गाड़ा गया था। इसी बात की स्मृति में कर्बला में प्रत्येक वर्ष बड़ा मेला होता है। कर्बला में हज़रत इमाम साहब का सबसे प्रथम स्मारक जिसने बनवाया उसकी बाबत कुछ पता नहीं चलता। और न यही मालूम होता है कि वह किस सन् में बनवाया गया था। किन्तु इस बात को मानना पड़ता है कि हज़रत ईसा की नवीं सदी में इमाम साहब का कोई स्मारक वहाँ अवश्य था। ख़लीफ़ा मुतवक्किल सन् ८४६ से सन् ८६१ तक बग़दाद के राजसिंहासन का स्वामी था। उसने जल-प्रवाह से हज़रत इमाम साहब के स्मारक को नष्ट करवा दिया था। और उस स्थान पर लोगों को जाने से रोक दिया था। किन्तु बाद को दसवीं सदी में ईरान के बूया राजघराने के अज़दुद्दोला नामक बादशाह ने एक बड़ा अच्छा स्मारक बनवा दिया। ग्यारहवीं सदी में कर्बला में एक पाठशाला की स्थिति का पता चलता

है।[1] उस समय यह एक छोटा सा नगर था। अब तो यह सारे मैसोपोटामिया में सबसे बड़ा और सुप्रसिद्ध नगर है। शिया मुसलमानों के विचार से सबसे पवित्र स्थान नजफ़ अशरफ़ है जहाँ हज़रत अली साहब की क़ब्र है। उसके बाद कर्बला का ही नम्बर है। मैसोपोटामिया के शिया मुसलमान नजफ़ अशरफ़ में अपने को दफ़न किया (गाड़ा) जाना सबसे बड़ा सौभाग्य समझते हैं। परन्तु भारत और ईरान के शिया कर्बला को ही पसन्द करते हैं। और कर्बला का वह स्थान भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है जहाँ पर कि हज़रत इमाम साहब आकर ठहरे थे।

चौदहवीं सदी में इब्नबतूता नामक एक बड़ा भारी मुसलमान यात्री हुआ है। उसने कर्बला की भी यात्रा की थी। वह लिखता है[2] कर्बला एक छोटा सा शहर है। खजूर के बाग़ इसको चारों ओर से ढांपे हुए हैं। फ़ुरात नदी के पानी से यह शहर तर (सींचा) रहता है। पवित्र क़ब्र शहर ही में है। वहाँ एक बड़ी पाठशाला है। और एक ख़ानकाह[3] भी है इस ख़ानकाह में प्रत्येक आने-

1. Holy places of Mesopotaima P. 12.

२ फ़क़ीरों और साधुओं के रहने के स्थान को ख़ानक़ाह कहते हैं।

३ रहलत इब्नबतूता प्रथम भाग पृ० १६४

जाने वाले को भोजन मिलता है।

पवित्र क़ब्र वाले मकान के दरवाजे पर आदमी तैनात रहते हैं। उनकी आज्ञा के बिना कोई भी आदमी अन्दर नहीं जा सकता। भीतर जाने से पहिले लोग ड्योढ़ी को चूमते हैं। यह चाँदी की बनी हुई है। क़ब्र पर सोने और चाँदी की कन्दीलें (लालटेन) लटकी हुई हैं। और दरवाजे पर रेशम के परदे पड़े हुए हैं।

इस शहर में दो घरानों के लोग रहते हैं—एक रखीक की सन्तान कहलाती है दूसरी फ़ायज़ की—दोनों में सदैव झगड़ा रहा करता है—सब शिया हैं—और निःसन्देह दोनों एक ही दादा की सन्तान हैं। इनके पारस्परिक लड़ाई झगड़ों से यह शहर उजड़ सा गया है।

कर्बला में अन्य प्रतिष्ठित क़ब्रें

कर्बला में ही हज़रत इमाम हुसैन साहब के एक भाई हज़रत अब्बास साहब का भी एक सुन्दर स्मारक है। ईरान के बादशाह नादिरशाह ने दोनों स्मारकों के गुम्बद व मीनारों को सुनहरा करवा दिया था[१] वहाबी मुसलमानों का मत है[२] कि क़ब्रों को सजाना धजाना व उनपर गुम्बद या शानदार मकान बनाना अधर्म है। और जो ऐसा करते हैं वे अधर्मी हैं।

१ Holy places of mesopotamia, P 12.

२ मजाहिबुल इस्लाम—पृ० ५९६ व ६००।

सन् १७९१ से लेकर सन् १८०३ तक अरब में वहाबियों का नेता अब्दुल अज़ीज़ था। सन् १८०१ की बात है कि दो लाख सेना लेकर वह कर्बला में पहुँचा—सेना को मार धाड़ की आज्ञा दी। छः घड़ी तक मार-धाड़ हुई। सात हज़ार के लगभग मनुष्य मारे गए। हज़रत इमाम हुसैन साहब तथा हज़रत अब्बास साहब की कब्रों की बहुमूल्य वस्तुएँ विशेष रूप से लूटी गईं। परन्तु वह दोनों मकबरे आज भी कुछ कम मूल्य के नहीं हैं और उन दोनों स्थानों के अन्दर केवल मुसलमान ही जा सकते हैं।

कर्बला से उत्तर-पूर्व की ओर मुसैब नगर की सड़क पर सात मील की दूरी पर हज़रत इमाम साहब के एक भतीजे हज़रत साहब की कब्र है। और रशीदिया नहर के तट पर कर्बला से ३½ मील दूर उत्तर-पश्चिम में हज़रत साहब की कब्र है। ये पहिले यज़ीद की ओर थे और बाद को लड़ाई के अवसर पर हज़रत इमाम साहब के साथ सम्मिलित हो गए थे[1]।

शहादत की घड़ी

हज़रत इमाम हुसैन साहब दोपहर के बाद कुछ दिन ढले जुमा (शुक्रवार) की निमाज़ के समय या उसके कुछ ही बाद शहीद हुए थे। उस दिन सन् ६१ हिजरी के मुहर्रम की दसवीं

[1] Holy places of Mesopotamia, P. 12.

तारीख[1] थी—इसी कारण इस तिथि पर विशेष रूप से शोक मनाया जाता है। परन्तु प्रत्येक मुहर्रम मास के प्रथम दिवस से ही शोक की घड़ी का श्रीगणेश हो जाता है और मुहर्रम की दसवीं तक या दसवीं को बहुत ज्यादा शोक मनाया जाता है। यहाँ तक कि कहीं-कहीं लोगों की जान खतरे में पड़ जाती है अथवा किसी-किसी को यमराज के दर्शनों का सुअवसर मिलता है। वास्तव में इसी हृदय-विदारक घटना के कारण सारा मास ही शोक का मास माना जाता है। और मुहर्रम शब्द तक से शोक का अर्थ लिए जाने लगा है। उदाहरणार्थ—कभी-कभी सुनने में आता है, क्या मुहर्रम सूरत बनाए बैठे हो। मुहर्रम की सातवीं आठवीं और नवीं तारीख को पानी न मिलने कारण लोगों को बहुत कष्ट पहुँचता था—इसलिए इन तारीखों की भी शोक के लिए बड़ी महत्ता है। नवीं और दसवीं तारीख के बीच की रात्रि कतल की रात्रि होती है। इस रात्रि को हज़रत इमाम साहब ने सबको उपदेश दिया है—तथा यथोचित रूप से सबको समझाया था।

मुहर्रम की दसवीं तारीख हज़रत इमाम साहब की

---

१ सन् ६१ हिजरी के मुहर्रम की दसवीं तारीख ईस्वी सन् के अनुसार संभवतः १० अक्टोबर सन् ६८० को ठहरती है।

मृत्यु के कारण अधिक विख्यात है। किन्तु एक ग्रन्थ में

मुहर्रम की दसवीं तथा अन्य बातें[1]

इस तारीख के सम्बन्ध में अन्य जिन बातों अथवा विशेष घटनाओं का उल्लेख है उनमें से कुछ बातें निम्नलिखित हैं—

१. खुदा ने आकाश, पृथ्वी, कलम, तख्ती, फरिश्ते एवं पूज्य बाबा आदम को पैदा किया।

२. पैगम्बर हज़रत दाऊद साहब का पाप क्षमा हुआ।

३. पैगम्बर हज़रत सुलैमान को मुल्क दिया गया।

४. हज़रत मुहम्मद साहब पैदा हुए[2]।

५. पूज्य बाबा आदम की तोबा स्वीकार हुई।

६. हज़रत इब्राहीम साहब आग से बचे।

७. हज़रत यूसुफ साहब कैद से छूटे।

८. पैगम्बर हज़रत यूनिस साहब मछली के पेट से निकले।

९. हज़रत याकूब साहब की आँख ठीक हो गई।

१०. इसराईल जाति के लिए नील नदी में अच्छा मार्ग बन गया।

उक्त बातों के सिवाय और भी बहुत सी बातें इस

---

१ फ़लाह दीन व दुनिया—पृ० २०५ व २०६।

२ तक़वीम इस्लाम—पृ० ४५ व ४६।

ऐसा मत एक ही आदि व्यक्ति का है सभी का नहीं।

तारीख के विषय में पाई जाती हैं। यही तारीख प्रलय के लिए भी कुछ लोग समझते हैं। इस तारीख को आशोरा भी कहते हैं। और हज़रत मुहम्मद साहब ने भी इस तारीख की बड़ी महिमा बतलाई है।

भिन्न भिन्न समयों में मुहर्रम मास की अन्य तारीखों में जो और घटनाएँ हुई हैं उनमें से कुछ ये हैं—

मुहर्रम मास की अन्य घटनाएँ[1]

१. पहली मुहर्रम से हिजरी सन् का श्रीगणेश हुआ।

२. सातवीं मुहर्रम सन् ६१ हिजरी को खुरासान में अलमुक़न्ना नामी व्यक्ति ने नबी होने का दावा किया था।

३. मुहर्रम १९ सन् ९४ हिजरी को हज़रत इमाम जैनुल् आब्दीन साहब स्वर्गलोक सिधारे थे।

४. मुहर्रम १८ सन् ६१२ हिजरी को शहाबुद्दीनगोरी की मृत्यु हुई थी।

५. मुहर्रम २८ सन् ३० हिजरी को इराक़ और शाम के मुसल्मानों में शुद्ध कुरान शरीफ पर मतभेद हुआ था।

इस प्रकार और बहुत सी बातें हैं जिनको मुसलमान लोग बहुत महत्त्व देते हैं।

---

१ फलाह दीन व दुनिया—पृ० २१२ व २१३।

२ इस्लामी बड़ी तक़्वीम बम्बई, सन १३४३ हि०—पृ० ४० व ४१

३ अयाकुलतक़्वीम सन् १३४३५ हिजरी—पृ० २६।

४ यसो जन्त्री सन् १६२३ ई०—पृ० २४ व २५।

इसमें सन्देह नहीं कि हज़रत इमाम हुसैन साहब तथ उनके कुटुम्बियों व साथियों पर जो कुछ बीता है—यदि पक्षपात रहित कोई उस पर भली भाँति विचार करे तो वह किसी समय में भी शोक प्रकट किये बिना नहीं रह सकता

शोक स्मृति की वार्षिक प्रथा

किन्तु प्रतिवर्ष मुहर्रम मास में विशेष रू से जो शोक-स्मृति मनाई जाती है, उस को बहुधा हम मुहर्रम कहते हैं। इसके सिवा ह यह भी देखते हैं कि भारतवासियों में से शायद ही को ऐसा होगा जो मुहर्रम से थोड़ा बहुत परिचित न हो बलि बहुतेरे हिन्दू तो कहीं-कहीं इसमें भाग लेना अपना पर कर्तव्य समझते रहे हैं।

हज़रत इमाम हुसैन साहब सन् ६८० में शहीद ((मारे गये) थे परन्तु उनके नाम पर जो अब धूम धाम शोकक्रिया जाता है उसकी नींव ग्यारहवीं ईसवी शताब्दी पड़ी थी। इस काल के पहले बग़दाद के खलीफा का ज़ था। वे लोग कट्टर सुन्नी थे। उनके डर के मारे सम शिया लोग सुन्नियों में ही मिल-मिलाकर रहते थे पर जब बग़दाद के राज-घरानों का पतन हुआ और शि लोगों ने कुछ ज़ोर पकड़ा तब बूया[1] राज्य के समय में र

[1] बूया लोगों का दूसरा नाम दयालमः है—मज़ाहि इस्लाम—पृ० ४३२।

से प्रथम सन् ४०० हिजरी अर्थात् सन् १००९ में शोक मनाने की प्रथा चली। एक लेखक का कथन है कि पहिले पहिले दस्तूर यह था कि लोग बाज़ारों में काले कम्बल लटकाते और रोते-पीटते थे[1]। थोड़े ही दिनों में इस बात ने बहुत ज़ोर पकड़ा। और इस प्रकार शोक मनाने की शैली कुछ न कुछ बदलती ही गई और कुछ काल के पश्चात् भयङ्कर तथा करुणाजनक स्थिति धारण कर बैठी।

ताज़िया[2] और उसका चलन

बादशाह तैमूर के नाम से बहुतेरे लोग परिचित हैं। वह सन् १३३६ ई० में पैदा हुआ व सन् १४०५ ई० में मरा था। ऐसा प्रतीत होता है कि वह धूमधाम का बड़ा प्रेमी था, क्योंकि अपने लड़कों के विवाह में उसने ऐसा महोत्सव मनाया था जो दो मास तक होता रहा था। इसमें बहुत दूर दूर के लोग भी सम्मिलित थे। कहते हैं कि इसी बादशाह ने सबसे पहले ताजिया रखने की नींव डाली थी[3]। ताज़िया को उस स्मारक का प्रतिरूप सम-

---

१ तक़वीम इस्लाम—पृ० ४८।

२ ताज़िया के मुख़्त—'ताबूत' या 'दल'—शब्द भी कहीं-कहीं प्रयोग किया जाता है।

३ सच्चा हाल शहादत का—पृ० ४२.

1 Dictionary of Islam—P. 410.

इसमें सन्देह नहीं कि हज़रत इमाम हुसैन साहब तथा उनके कुटुम्बियों व साथियों पर जो कुछ बीता है—यदि पक्षपात रहित कोई उस पर भली भाँति विचार करे तो वह किसी समय में भी शोक प्रकट किये बिना नहीं रह सकता।

शोक स्मृति की वार्षिक प्रथा

किन्तु प्रतिवर्ष मुहर्रम मास में विशेष रूप से जो शोक-स्मृति मनाई जाती है, उसी को बहुधा हम मुहर्रम कहते हैं। इसके सिवा हम यह भी देखते हैं कि भारतवासियों में से शायद ही कोई ऐसा होगा जो मुहर्रम से थोड़ा बहुत परिचित न हो बल्कि बहुतेरे हिन्दू तो कहीं-कहीं इसमें भाग लेना अपना परम कर्तव्य समझते रहे हैं।

हज़रत इमाम हुसैन साहब सन् ६८० में शहीद हुए (मारे गये) थे परन्तु उनके नाम पर जो अब धूम धाम से शोकक्रिया जाता है उसकी नींव ग्यारहवीं ईसवी शताब्दी में पड़ी थी। इस काल के पहले बग़दाद के खलीफा का ज़ोर था। वे लोग कट्टर सुन्नी थे। उनके डर के मारे समस्त शिया लोग सुन्नियों में ही मिल-मिलाकर रहते थे परन्तु जब बग़दाद के राज-घरानों का पतन हुआ और शिया लोगों ने कुछ ज़ोर पकड़ा तब बूया[1] राज्य के समय में सब

[1] बूया लोगों का दूसरा नाम दयालमः है—मज़ाहिबुल इस्लाम—पृ० ४३३।

से प्रथम सन् ४०० हिजरी अर्थात् सन् १००९ में शोक मनाने की प्रथा चली। एक लेखक का कथन है कि पहिले पहिले दस्तूर यह था कि लोग बाज़ारों में काले कम्बल लटकाते और रोते-पीटते थे[1]। थोड़े ही दिनों में इस बात ने बहुत ज़ोर पकड़ा। और इस प्रकार शोक मनाने की शैली कुछ न कुछ बदलती ही गई और कुछ काल के पश्चात् भयङ्कर तथा करुणाजनक स्थिति धारण कर बैठी।

ताज़िया[2] और उसका चलन

बादशाह तैमूर के नाम से बहुतेरे लोग परिचित हैं। वह सन् १३३६ ई० में पैदा हुआ व सन् १४०५ ई० में मरा था। ऐसा प्रतीत होता है कि वह धूमधाम का बड़ा प्रेमी था, क्योंकि अपने लड़कों के विवाह में उसने ऐसा महोत्सव मनाया था जो दो मास तक होता रहा था। इसमें बहुत दूर दूर के लोग भी सम्मिलित थे। कहते हैं कि इसी बादशाह ने सबसे पहले ताजिया रखने की नींव डाली थी[3]। ताज़िया को उस स्मारक का प्रतिरूप सम-

---

१ तक़वीम इस्लाम—पृ० ४८।

२ ताज़िया के नुमुत्त—'ताबूत' या 'दल'—शब्द भी कहीं-कहीं प्रयोग किया जाता है।

३ सच्चा हाल शहादत का—पृ० ४२.

1 Dictionary of Islam—P. 410.

झना चाहिये जो हजरत इमाम साहब की क़ब्र का है[१]। ताज़िया शब्द अरबी भाषा का है। इसका अर्थ है[२] रोना, पीटना, शोक करना, मातम करना, मातमपुरसी करना—रोने पीटने की नींव पहले ही से पड़ी थी इस कारण ताज़ियादारी और मातम करने का चलन बड़े जोरों के साथ शीघ्र फैल गया। भारत में बनाव श्रृंगार के साथ उत्सव करने की रीति है। हिन्दू लोग भी सहर्ष इसमें भाग लेने लगे। इसलिए ताज़ियादारी की धूम बहुत जल्द मच गई। भारत में अनेक लोग ऐसे हैं जिनमें ताज़िया के प्रति आज भी असीम श्रद्धा है। और जो स्वयं अपने हाथों से प्रत्येक वर्ष ताज़िया बनाते हैं। वास्तव में यह श्रद्धाभक्ति का ही फल है कि कोई अपना ताज़िया सुन्दर चमकीले कागज़ का बनाता है तो कोई अबरक का बनाता है। बेहना (धुनिया) रुई का बनाता है। गड़ेरीवाला गड़ेरियों का बनाता है। सिरकी वाला सिरकी से तैयार करता है। शीशेवाला शीशे का बनाता है। हलवाई मिठाई का ताज़िया बनाता है। तम्बोली पान का बनाता है। और कोई व्यक्ति लकड़ी का तैयार करके उसपर जौ बोता है और वह 'जौ का ताज़िया' कहलाता है[३]। इस प्रकार

२ (अ) सच्चा हाल शहादत का—पृ० ३१.

३ (आ) फ़ातिमी दावत इस्लाम—पृ० १२२.

भक्त लोग भिन्न-भिन्न ताज़िया बनाते हैं। लखनऊ के इमामबाड़ा में मोम का एक बड़ा अच्छा ताज़िया है।

भारत के अनेक स्थानों में बड़े सुन्दर सुन्दर ताज़िया बनते हैं। परन्तु किसी किसी स्थान पर सुन्दर होने के सिवा इतने बड़े आकार के बनते हैं कि उनके उठाने के लिए लगभग ५०–६० मनुष्यों की ज़रूरत पड़ती है। ऐसा ताज़िया भी बड़ा विलक्षण बनता था। उससे लोगों की कलात्मक प्रवृत्ति और वैभव-मोह का पता लगता था।

एक लेखक का कहना है कि सन् १९०६ ई० में मैंने केवल लखनऊ के ताज़ियों को गिना तो मालूम हुआ कि लखनऊ में लगभग ११ सौ ताज़िये हिन्दुओं के थे[२]। किन्तु अब थोड़े दिनों से हिन्दू लोग ताज़ियों में कम भाग ले रहे हैं।

धूमधाम की बातें

इसमें सन्देह नहीं कि मुहर्रम की महत्ता निर्विवाद रूप से शिया मुसलमानों में ही बहुत ज्यादा है। शिया लोग इसे धर्म का एक अङ्ग मानते हैं। परन्तु भूमण्डल के भिन्न-भिन्न देशों में इसके मानने की जो प्रथा है वह बहुत कुछ एक दूसरे से भिन्न है। वास्तव में ईद आदि के मनाने में

१ फारसी लुगात फिरोजी—पृ० ६७.

२ फातिमी दावत इस्लाम—पृ० १२० व १२१.

इतना अन्तर नहीं जितना मुहर्रम के मनाने में है। उत्त भारत के कई स्थानों जैसे—इलाहाबाद, आगरा और लाह आदि के मोहर्रम हमने कई बार अपनी आँखों से दे और खूब देखे। इलाहाबाद में दसवीं को कर्बला में ताजि पहुँचाये जाते हैं और लाहौर में केवल घोड़े को दस के दिन कर्बला में ले जाते हैं और उसी में बड़ी धूमधा होती है। इसके सिवाय कहीं मेंहदी नामक उत्सव व रङ्ग चोखा होता है, कहीं दुलदुल की धूमधाम खास हो है कहीं झण्डों की विचित्र बहार होती है। कहीं कतल व रात अच्छी होती है। और कहीं का कोई अन्य ही दृ खास होता है। उत्तरी भारत में प्रायः जो कुछ होता उसका संक्षिप्त वृत्तान्त यह है कि ताजिये खूब सजाये जा हैं। फूल, माला, गजरा, रेवड़ी, मलीदा, शर्बत, पान आ का चढ़ावा चढ़ता है। मानताएँ मानी जाती हैं।

ताजिये की रोटी पवित्र समझी जाती है। औ जब ताजिया कर्बला जा रहा हो तब उसके नीचे से निक जाना कहीं कहीं अच्छा समझा जाता है। ढोल-ता आदि खूब बजाये जाते हैं। और कहीं कहीं इतने ब बड़े ढोल होते हैं कि वे छोटी छोटी गाड़ियों पर लदे रह हैं। जब दो मनुष्य बजाते हैं तब कहीं उनसे पूरी आवा निकलती है लोग छाती भी पीटते-कूटते हैं। शोकजन

पद्य (मरसिये[1]) पढ़ते हैं। हज़रत इमाम हुसैन साहब हज़रत इमाम हसन साहब या हज़रत अली साहब का नाम लेते हैं। और शोक मनाते हैं। हज़रत इमाम हुसैन साहब आदि पानी से तरस कर मरे थे इसलिए उनके नामपर पानी या शर्बत पिलाना या पिलवाना लोग पुण्य कार्य मानते हैं। कोई कोई अपने बच्चे को इमाम हुसैन साहब का फ़कीर बनाता है और उससे दूकानों पर भीख मंगवाता है ताकि बच्चा जीवित रहे॥

---

[1] वास्तव में ऐसे पद्य मरसिया कहलाते हैं जिनमें किसीकी मृत्यु तथा उसके दुखों की चर्चा होती है। किन्तु अब प्रायः ऐसे पद्यों को मरसिया कहा जाता है जिनमें हज़रत इमाम हसन व इमाम हुसैन साहब की मृत्यु तथा उनके अन्य कुटुम्बियों के दुखों और कर्बला की हृदय-विदारक घटनाओं का हाल होता है। मरसिया का आशय रखने वाले पद्य तनिक भेदभाव से 'मुजरा', 'सलाम' या 'नौ' कहलाते हैं। लखनऊ के 'मीर अनीस' और 'मिर्जा दबीर' नामी उर्दू कवियों ने मरसिया कहने में जो यश प्राप्त किया है वह किसी अन्य को नहीं प्राप्त हुआ है और संभवतः भविष्य में भी न किसी को प्राप्त होगा। निदान उर्दू साहित्य-संसार में मरसियों की चर्चा कुछ कम नहीं है और इनके पढ़े जाने की प्रथा भी भारत के अनेक स्थानों में कुछ कम नहीं है।

मेराज[1] भी कहा जाता है। निदान आप जिस सवारी पर गए थे वह बुर्राक था—यह गदहे से बड़ा तथा खच्च से छोटा था, यह सफेद रंग का था और इसके दो पंख भी थे[2]।

हज़रत इमाम साहब की पुत्री का नाम बीबी सकीना था। हज़रत क़ासिम आपके बड़े भाई हज़रत हसन साहब

मेंहदी

के पुत्र अर्थात् आपके भतीजे थे। सुप्रसिद्ध बात यह है कि बीबी सकीना और हज़रत क़ासिम का विवाह होने वाला था[3]। इसी कारण सातवें मुहर्रम को मेंहदी का जुलूस निकाला जाता है। बाजे बजाए जाते हैं। और आनन्द मङ्गल का सामान होता है। मेंहदी रचने तथा विवाह की खुशी मनाने का प्रबन्ध किसी किसी स्थान में विशेष रूप से होता है। तथा कहीं कहीं यह दोनों बातें कम देखने में आती हैं।

---

१ सीरतुन्नबी जिल्द (भाग) सोम (तीसरा) पृष्ठ २७१ से ३२८ तक। लेखक मौलाना शिबली साहब—शिबली मंज़िल आज़मगढ़ से प्रकाशित हुई है।

2 Dictionary of Islam—P.44.

३ सच्चा हाल शहादत का—पृ० २२.

नगर हैदराबाद (दक्षिण) में एक स्थान नाल साहब की दरगाह के नाम से विख्यात है। मुहर्रम के दिनों में वहाँ बड़ी भीड़ रहा करती है। लोग नाना प्रकार के चढ़ावे आदि चढ़ाया करते हैं। वहाँ घोड़े की एक नाल है। उसकी बाबत यह प्रसिद्ध है कि वह हज़रत इमाम हुसैन साहब के घोड़े की नाल है। वह एक सौदागर के पास थी। कुतुब-शाही घराने के जो बादशाह हुए हैं उन्हीं में से किसी ने उसे, एक पवित्र तथा आदरणीय वस्तु समझ कर, खरीदा था। उस नाल को एक लकड़ी पर झण्डे के स्वरूप में गाड़ा गया है। और एक विशेष स्थान पर रक्खा गया है। इसी को नाल साहब की दरगाह कहते हैं।

नाल साहब की सवारी[1]

बहुतेरे लोगों की श्रद्धा नाल साहब के निमित्त जितनी है उतनी किसी अन्य पर कदाचित् न होगी। श्रद्धालु भक्तों में से अधिकतर शहर के साईस हैं पर शहर के सुन्नी शिया, ऊँच-नीच, निर्धन-धनी, अर्थात् प्रत्येक श्रेणी के लोग नाल साहब को मानते हैं। उनके नाम पर फकीर बनते हैं। मुसलमानों से अधिक अनन्य श्रद्धा-भक्ति हिन्दुओं की होती है और इस कार्य्य में स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कहीं ज्यादा हुआ करती है। मुहर्रम की नवीं

१ मज़ाहिबुल इस्लाम—पृ० ४४० व ४४१.

तारीख को जब सब ताजिये निकल चुकते हैं तब नाल साहब की सवारी बड़ी धूम-धाम से निकलती है। शहर के सारे साईस सवारी के साथ होते हैं। प्रत्येक के हाथ में एक बड़ी मशाल होती है। सभी उसको घुमाते जाते हैं। उनके हाथों में लकड़ियाँ, डण्डे और लाठियाँ भी रहती हैं। यह सब के सब जो निरर्थक या सार्थक वाक्य कहा करते हैं उनमें से कुछ ये हैं—

१. दूला ! दूला !!

२. दूला ! या अली !!

३. नाल साहब पत्थर घट्टी ! (इस वाक्य का सम्भवतः कारण यह है कि नाल साहब की दरगाह मुहल्ला पत्थर घट्टी में है)।

४. क्या खूब चली दस्ती !

५. जम जम के जगा तेगा !

नाल साहब की सवारी के साथ साईसों की मशालों के सिवाय राज्य के व्यय से एक हजार के लगभग मशालें होती हैं। राज्य की मशालें साधारण नहीं होतीं। बल्कि काफी व्यय से तैयार की जाती हैं। उनका दस्ता बड़ा होता है। और उन पर अबरक के फूल-पत्ते लगे रहते हैं। तीन स्थानों पर एक एक अमूल्य वस्त्र नाल साहब की भेंट में चढ़ता है। और प्रातःकाल आठ बजे के करीब नाल साहब

का चक्कर समाप्त हो जाता है।

एक लेखक[1] ने नाल को नाल का केवल एक टुकड़ा लिखा है। और यह भी लिखा है कि नाल साहब को सवारी की नकल दक्षिण के प्रत्येक नगर और ग्राम में होती है। उक्त लेखक ने यह भी लिखा है कि दक्षिण भारत में इस (मुहर्रम) के दिन कोई शेर बनता है तो कोई रीछ, कोई बन्दर तो कोई मछन्दर, कोई चोर तो कोई फकीर। निदान लोग नाना प्रकार के रूप धारण करते हैं, और सड़कों पर गाजे-बाजे के साथ फिरते हैं। उनके साथ तमाशा देखने वाले लड़कों की भीड़-भाड़ रहती है। सब लोग हसन हुसैन या दूला! दूला!! कहते हैं। जिस धनी को वे लोग तमाशा दिखाते हैं बाद में उससे उन्हें कुछ इनाम मिलता है।

बीबी का झंडा[2]

हजरत इमाम साहब की माता का नाम श्रीमती बीबी फातिमा है। उन्हीं के नाम पर एक झंडा बड़ी धूम धाम के साथ हैदराबाद नगर (दक्षिण) में निकलता है। उसको बीबी फातिमा का अलम[3] अथवा 'बीबी का अलम' कहा जाता है। यह

१ तक्वीमुल् इस्लाम—पृ० ४८।

२ देखो ओरस अदब – पृष्ठ १५१—१५८.

३ अलम शब्द का अर्थ है—झण्डा।

वहाँ के एक इमामबाड़ा में स्थापित है। इसके निमित्त हैदराबाद राज्य की ओर से काफी सम्पत्ति है। गोलकुण्डा (हैदराबाद) में कुतबुल्लम नामी कोई बादशाह हो चुका है उसी ने इस झण्डा की स्थापना अपने काल में की थी।

झण्डा में लाखों रुपये के अमूल्य रत्न लगे हुए हैं। उनके ऊपर पतले रेशमी कपड़े की चादर रहती है। अतः उस रेशमी वस्त्र से छन छन कर रत्नों की चमक-दमक दर्शकों को अचंभे में डाल दिया करती है। यह अपूर्व झण्डा मुहर्रम की दसवीं तारीख को एक बड़े हाथी पर निकला करता है। आगे आगे राज्य की सेना होती है। साथ में छोटे बड़े बहुत से लोग होते हैं। झंडा सहित हाथी गलियों और सड़कों से गुजरता है। प्रत्येक स्थान पर हिन्दू-मुसलमान तथा श्रद्धालु भक्तों की बड़ी भीड़ होती है। निदान यह झण्डा बड़ी धूम-धाम के साथ निकलता है। एक नियत स्थान पर ऐसा होता है कि राज्य के अधिकारी श्रीमान् निज़ाम साहब उसके दर्शन के निमित्त उपस्थित होते हैं[1]। सायंकाल के लगभग मूसा नदी में चादर

---

१ मुझे यह भी बतलाया गया है कि श्रीमान् निज़ाम साहब उस झण्डा में एक बहुमूल्य व सुन्दर रेशमी कपड़ा बाँधते हैं। इसी को वहाँ 'ढट्टी बाँधना' कहा जाता है और यह बात प्रतिवर्ष लगभग एक बजे दिन को हुआ करती है।

घाट नामी स्थान में झण्डा के फूल आदि गाड़ दिये जाते हैं अथवा नदी में फेंक दिये जाते हैं। और एक वर्ष के बाद झण्डे का अपूर्व दृश्य फिर देखने में आता है।

बहुतेरे साधारण हिन्दू ताजिये को पूजते हैं। नाना प्रकार की लीलायें ताजिया के दिनों में करते हैं। और कुछ न कुछ खर्च भी करते हैं। किन्तु भारत के अनेक हिन्दू राजे महाराजे भी इसमें बड़ा भाग लेते हैं। कहा जाता है कि ग्वालियर[1] में मुहर्रम के निमित्त लाखों रुपये व्यय किया जाता है। पूरे साल भर ताजिया बनता रहता है। और सबसे अधिक शानदार ताजिया होता है।

ताजिया और हिन्दू राजे

इसके सिवाय एक विचित्र बात यह भी है कि भूतपूर्व महाराजा हाथ बाँधे हुए—नंगे पाँव श्रद्धापूर्वक ताजिया के सामने उपस्थित होते थे। बड़ौदाराज में एक सोने का ताजिया है, जाम नगर (काठियावाड़) में सोने व चाँदी के ताजिये राज्य की ओर से हैं। जयपुर में भी राज्य की ओर से कुछ धन ताजिया के लिए खर्च किया जाता है। फलतः इन बड़ी रियासतों के सिवाय छोटी मोटी रियासतें तथा अनेक बड़े बड़े धनी हिन्दू भी मुहर्रम में काफी खर्च किया करते हैं।

---

१ फातिमी दावत इस्लाम—पृ० १२०

भारत में मुहर्रम व ताजिया की बाबत जो कुछ लिखा गया है, (तथा जो कुछ अनेक स्थानों पर देखा जाता है) उसको दृष्टि में रखते हुए यह प्रश्न उठता है, कि उक्त बातों ने क्यों ऐसा। विचित्र रूप भारत में धारण किया[1]। इस बात का उत्तर यह है कि भारत के उत्तरी और दक्षिणी दोनों भागों में ऐसे अधिकारी तथा प्रतिष्ठित व्यक्ति हुए हैं, जो कि शिया थे अथवा उनका झुकाव शिया. धर्म्म की ओर अधिक था। जैसा कि निम्नलिखित बातों से प्रकट होता है—

भारत में मुहर्रम का जोर

(१) दक्षिणी भारत के बहमनी, आदिलशाही, निजामशाही, और कुतुबशाही नामक राज्य घराने के लोग शिया थे—उन लोगों ने चौदहवीं शताब्दी ईस्वी के मध्यकाल से लेकर चिरकाल तक दक्षिण में राज्य किया था।

(२) दिल्ली के मुगल बादशाहों में कई बादशाह शिया धर्म्म की ओर बड़ा झुकाव रखते थे। हुमायूँ स्वयं शियों के प्रति अच्छा भाव रखता था। अकबर के समय में अब्दुर्रहीम खाँ खानखाना तथा कुछ अन्य प्रतिष्ठित राजकर्मचारी शिया विचारों के अनुयायी थे।

जहाँगीर के समय में नूरजहाँ बेगम के सम्बन्धी

१ मजाहिबुल इस्लाम—पृ० ४३८ से ४४४ तक।

शिया थे। और उनका जोर राजकाज में इतना हो गया था, कि उनकी बदौलत ईरान वा मैसोपोटामिया के शियों की भरमार हो गई थी।

(३) लखनऊ के सब नव्वाब शिया ही थे। निःसन्देह यहाँ इतना कह देना भी अनुचित न होगा कि हिन्दुओं की धार्म्मिक त्रुटियों से भी ताजिया आदि के प्रचार में अधिक सफलता हुई है।

मुहर्रम का जो उत्सव वर्तमान रूप में मनाया जाता है वह उन मुसलमानों के धर्मविश्वास के अनुसार है जो 'शिया' कहलाते हैं। सुन्नी मुसल-

मुसलमान और ताजिया का विरोध

मान या दूसरे प्रकार के मुसलमान हजरत इमाम साहब की शोकजनक शहादत के साथ हमदर्दी रखते हैं। उसकी महत्ता को आदर-सत्कार तथा हृदय से स्वीकार करते हैं। परन्तु जो कुछ शिया कहते हैं या जिस रूप में करते हैं उसे वे लोग अच्छा नहीं समझते। बल्कि सर्वथा अनुचित तथा वर्जित मानते हैं। यही कारण है कि कभी-कभी शियों और सुन्नियों में बड़े बड़े उपद्रव हुए हैं। सुन्नी विद्वानों ने विरोध में पुस्तकें भी लिखी हैं।

राजपुताने में टोंक नामक एक मुसलमानी रियासत है। जब हम लाहौर में अरबी पढ़ते थे उस समय वहाँ

टोंक के भी कई मुसलमान विद्यार्थी थे। उनके साथ हमारा अच्छा परिचय था। एक हजरत हमारे साथ ही कालिज में पढ़ते थे। मुहर्रम के दिनों में एक दिन उन्होंने हमें बतलाया कि टोंक के नवाब साहब की तरफ से ताजिया बनाने की बड़ी मुमानियत है। कोई भी व्यक्ति वहाँ ताजिया बना नहीं सकता। यदि कोई उनकी इस आज्ञा का उलंघन करे तो जेलखाना में डाल दिया जाय। हमें अपने मित्र की उक्त बात संशययुक्त और विस्मयजनक मालूम हुई। किन्तु जब हमें मालूम हुआ कि नवाब साहब सुन्नी मुसलमान हैं तो सारा भेद खुल गया।

मुसलमानों का एक समुदाय नासबी या खारजी कहलाता है। इस समुदाय के लोग शियों के शत्रु होते हैं। अतः शाम देश के नासबी लोग मुहर्रम की दसवीं को ईद (खुशी) का दिन समझते हैं। नहाते हैं, अच्छे वस्त्र धारण करते हैं। आँखों में सुर्मा लगाते हैं। अच्छे अच्छे भोजन पकाते, खाते और खिलाते हैं।

ख्वाजा हसन निजामी साहब लिखते हैं कि कट्टर विचार के मुसलमान ताजियों को कागज और बाँस की मूर्ति समझते हैं। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनेक बातों को दृष्टि में रखने से ताजिया पूजने और मूर्ति पूजने की हैसियत (दशा) एक सी दिखाई देती है। किन्तु

इस बात को नहीं भूल जाना चाहिए कि इन सब बुराइयों में इस्लाम के प्रचार की एक भलाई भी छिपी हुई है यदि सुबोध लोग इससे कुछ लाभ लेना चाहें[1]।

एक मुसलमान महाशय ही लिखते हैं कि हम देखते हैं कि मुहर्रम के दिनों में वह नई बातें और कुरीतियाँ होती हैं जिनका चलन न अब अरब में है न कभी पहिले था। अर्थात् जो बातें यजीद की सेना ने धूम-धाम और विजय के उत्सव में की थीं—वही बातें अब मुहर्रम के दिनों में ठीक समझी जाती हैं। स्त्रियों में जो कुरीतियाँ पैदा हो गई हैं, वह सब अधर्म की हैं। उनसे पाप के बिना पुण्य कभी नहीं मिल सकता[2]।

एक और मौलवी साहब लिखते हैं—बहुत लोग इन दिनों (मुहर्रम) में ताजिया बनाते हैं। ताजिया का बनाना बहुत बड़ा गुनाह (पाप) है[3]।

रोना, चिल्लाना, रोने की मजलिसें (सभायें, मुहर्रम में) करना आदि अधर्म है[4] ऐसा लेख एक अन्य मौलवी साहब का है।

---

१ फ़ातिमी दावत इस्लाम—पृ० १२१

२ हजरत इमाम हुसैन साहब—पृ० ३१

३ अशरफुत्तक़वीम—पृ० १२

४ सूफ़ी जन्त्री सन् १६१६ ई०—पृ० २५

सुन्नी मुसलमानों का मुहर्रम में भाग

सुन्नी मुसलमान हजरत अबूबकर, उमर, उस्मान और अली साहब को अच्छा मानते हैं। इन सभों को आदर की दृष्टि से देखते हैं। पर शिया लोग हजरत अली को छोड़ कर बाकी तीनों को आदर की दृष्टि से नहीं देखते और उनको नहीं मानते[1]। क्योंकि इनके मतानुसार हजरत अली साहब का प्रथम हक इन तीनों व्यक्तियों ने ही मारा था। निदान उक्त तीनों व्यक्तियों और कुछ अन्य व्यक्तियों को शिया लोग अनुचित शब्दों के साथ याद करते हैं।

ऐसी स्मृति को तबर्रा कहा जाता है। कहीं-कहीं मुहर्रम के दिनों में तबर्रा का बड़ा जोर होता है। इन बातों की बदौलत कई स्थानों में सुन्नी व शियों में बड़े-बड़े झगड़े व बखेड़े हो चुके हैं। खून खच्चर के सिवा जानों के जाने तक की नौबत आई है[2]। परन्तु ऐसा होने तथा सुन्नियों

---

१ यही कारण है कि सुन्नी लोग शियों को 'राफ़ज़ी' कहते हैं। पर शिया लोग अपने लिये इस शब्द का प्रयोग अच्छा नहीं मानते। लेखक।

२ अभी बहुत दिन नहीं हुए इलाहाबाद की तहसील मझनपुर के कराली नामक ग्राम में शिया व सुन्नियों में बड़ा भयकर झगड़ा हुआ था। इसी प्रकार के झगड़े कई अन्य स्थानों में भी हो चुके हैं। लेखक

के धर्मानुसार ताजिया व मुहर्रम उत्सव अनुचित होने पर भी सुन्नी लोग जो धूम-धाम करते हैं वास्तव में उसका मूल कारण यह है कि हिन्दुओं में धूम-धाम, गाजा-बाजा के साथ कोई सवारी या रामलीला के शानदार जुलूस निकालने की बड़ी प्रथा है। वास्तव में इसी के प्रभाव से मुसलमान भी मुहर्रम के जुलूस को बड़ी शान से निकालते हैं। हिन्दुओं के मुकाबिले में मेरा जुलूस कम न ठहरे इसी लाग-डाँट के विचार से बहुतेरे सुन्नी मुसलमान मुहर्रम के उत्सव में भाग लेते हैं। और इस प्रकार शिया और सुन्नी एक हो जाते हैं। अतएव मेला या जलूस के विचार से ही कई स्थानों में सुन्नी मुसलमान शियों के समान ही मुहर्रम मनाते हैं और हिन्दुओं की देखा-देखी बड़ी धूम-धाम मचाते हैं।

भारत में शिया और सुन्नी दोनों प्रकार के मुसलमान हैं। भारत के भिन्न-भिन्न भागों में जिस प्रकार यह स्मृति उत्सव मनाया जाता है—प्रकट ही है। उसकी बावत और अधिक क्या लिखा जाय। पर ईरान में प्रायः शिया मुसलमान ही हैं। इस बात का कारण यह मालूम होता है[१] कि ईरानियों के जातीय बादशाह यज्दगर्द की पुत्री हजरत

तिहरान का मुहर्रम

[१] फातिमी दावत इस्लाम—पृ० ११७

इमाम हुसैन साहब की धर्मपत्नी थीं। सम्भवतः इसी कारण इमाम हुसैन साहब के हृदय-विदारक बलिदान का असाधारण प्रभाव ईरान वालों पर स्वाभाविक रूप से पड़ा था। और शिया धर्म्म उनमें बहुत ज्यादा प्रिय हुआ है। निदान वहाँ की राजधानी तिहरान में जिस प्रकार मुहर्रम मनाया जाता है उसकी बाबत एक लेखक ने जो कुछ लिखा है वह इस प्रकार है—

तिहरान[१] में मुहर्रम की दसवीं तारीख तथा इससे पहले कुछ तारीखों को विशेष महत्व दिया जाता है। सभी लोग शोक में दत्तचित्त प्रतीत होते हैं। थोड़ी थोड़ी दूर पर शोक सभायें होती हैं। शिया लोग मरसिया (शोक पद्य) पढ़ते और हजरत इमाम हुसैन साहब का शोक मनाते हैं। इनकी आवाज इतनी करुण रस से पूर्ण होती है कि सुनने वालों की आखों से आंसू निकल पड़ते हैं। इनकी छाती कूटने से मनुष्य का हृदय कम्पायमान हो जाता है। शिया लोगों के लिए यह दिन शोक के विशेष दिवस हैं। इन दिनों ये लोग अपने शहीद (हजरत इमाम हुसैन साहब) की स्मृति को अपने अश्रुओं से हरा भरा करने के लिए खून पानी एक कर देते हैं।

---

१ इल्मी जंत्री सन् १९२३ ई०—पृ० ३५

मुहर्रम के जलूस में सबसे आगे तुरही बजाने वाले होते हैं, जो वास्तव में अपने बाजे की बदौलत जलूस की महत्ता को प्रकट करते हैं। इनके पीछे ऊँचे झण्डे हवा में लहराते रहते हैं। इनका रंग शोक के कारण काला होता है। इन पर बारीक काम भी किया रहता है। इनके पीछे बड़े-बड़े हिलते हुए मिहराब दिखाई पड़ते हैं। ये ऐसे चमकीले होते हैं कि इनसे आँखों में चकाचौंध हो जाती है। इनके बाद घुड़सवारों का जलूस होता है। ये सवार ढालों से सुसज्जित होते हैं। वास्तव में यह यजीद (शत्रु) के उन सवारों के स्वांग हैं जिनके हाथों से हजरत इमाम हुसैन साहब शहीद हुए थे। इसके पीछे विजय और सफलता के चिह्नों से सुसज्जित शत्रु यजीद का घोड़ा होता है और फिर शोक मनाने वालों का बड़ा भारी समूह होता है। जो उच्च स्वर से बार-बार पूछता है—हुसैन चेशुद अर्थात् (हजरत इमाम) हुसैन (साहब) क्या हुए? सारा समूह इस पर छाती कूटकर उत्तर देता है—हुसैन शहीद शुद—अर्थात् हजरत इमाम हुसैन साहब शहीद हो गये। इसके पश्चात् बराबर जोर-जोर से शोक प्रकट किया जाता है, करुणामय शब्द उच्चारण किए जाते हैं। 'या हसन, या हुसैन, या अली' हुसैन चिशुद, हुसैन चिशुद'।

उस जलूस के पीछे वे लोग आते हैं जिनके हाथो में मोटी मोटी जंजीरें होती हैं। इनसे वे लोग अपनी पीठ और कंधे घायल करते हैं। लोग जंजीरों को इतने जोर से पीठ पर मारते हैं कि रक्त की धारा बहने लगती है। इसके पश्चात् हजरत इमाम हुसैन साहब का घोड़ा होता है, और सबके अन्त में तलवार चलाने वाले लहुलुहान दिखाई पड़ते हैं। उनके सिर मुड़े होते हैं और उनसे रक्त बहता रहता है। बहुतेरे लोग अति दुःख तथा अधिक लहू के कारण वेहोश हो जाते हैं और कुछ मर भी जाते हैं। परन्तु मरते समय भी उनकी आत्मा इस बात से प्रसन्न रहती है कि हमारे लिए स्वर्ग के द्वार खुले हुए हैं और हमें अब सर्वदा का आनन्द तथा सुख प्राप्त होगा।

जंजीरें और तलवारें

गवर्नमेन्ट कालेज लाहौर के प्रोफेसर काज़ी फ़ज़लहक साहब एम. ए. ने सर गुजश्त मर्द खसीस नामक एक फारसी नाटक प्रकाशित कराया है। उसके उपोद्घात में आपने ईरान के मुहर्रम की चर्चा नाटक रूप में की है। आपके लेख का आशय यह है कि ईरान देश में मुहर्रम के दिनों में हजरत इमाम साहब तथा अन्य लोगों की शहादत

ईरान का मुहर्रम नाटक रूप में

की स्मृति मनाई जाती है। और कर्बला की भयङ्कर घटना को विशेष रूप से प्रभावित बनाने के लिए 'शोक सभाओं' अर्थात् 'शोक के तमाशों' का जो साधारण चलन है उसे वास्तव में धार्मिक करुण रस प्रधान नाटक ही समझना चाहिये। परन्तु इसमें न तो नाटक की कोई रङ्गभूमि ही होती है और न परदे या दृश्य ही होते हैं। बल्कि एक लम्बे चौड़े मैदान में तीस चालीस गज का लम्बा चौड़ा ६ फुट ऊँचा चबूतरा होता है। इसे सकू कहते हैं। चबूतरे के चारों ओर दस फुट चौड़ा रास्ता होता है ताकि इस स्थान में प्रत्येक नट या पात्र अपना अपना काम कर सके।

रास्ते के चारों ओर स्त्री पुरुष के बैठने के लिए स्थान होते हैं। ये स्थान मजबूत रस्से से घेरे जाते हैं। और इनमें भीतर जाने के लिए पृथक् पृथक् मार्ग होते हैं जब सब लोग करीब करीब आ चुकते हैं तब एक तोप दागी जाती है। इससे तमाशा आरम्भ होने की घोषणा हो जाती है।

सबसे पहले पानी वालों (मश्कियों) की टोली आती है ये लोग पानी से भरी हुई मश्कें उठाये रहते हैं। और अपने अपने कर्तव्य दिखाते हुए—'मयाद लब तिश्ना कर्बला' अर्थात् कर्बला के प्यासे लोगों की याद—की आवाज लगाते हैं। यह दृश्य हजरत इमाम हुसैन साहब की प्यास

की हृदय विदारक घटना को इस प्रकार स्मरण कराता है कि इससे उपस्थित लोगों के रोने चिल्लाने तथा उत्तेजन की कोई सीमा नहीं रहती। 'हाय हुसैन!' 'वाय[1] हुसैन की ध्वनि और छाती पीटने की आवाज से सारा आकाश मण्डल गूँज उठता है। फिर शोक करने वाले अधिव व्यक्ति उपस्थित होते हैं। इनमें हजरत मुहम्मद साहब अन्य बड़े बड़े नबी फिरिश्ते, हजरत मुहम्मद साहब के कुटुम्बी, माविया, यजीद, शमर[2] आदि पात्र आते हैं पैगम्बर, फरिश्ते और स्त्रियों के पात्रों के मुँह पर परद पड़ा रहता है। यजीद और शमर के स्वांगियों के प्रति उपस्थित जन बड़ी घृणा तथा लानत प्रगट करते हैं औ वास्तव में कार्यरूप में भी उनसे घृणा का व्यवहार किय जाता है। इससे प्रायः इन स्वांगियों या पात्रों के जान वाले पड़ जाते हैं। इस कारण इस कार्य के निमित्त जेल के कैदी चुने जाते हैं। सारे पात्र उचित रूप से अपने अपने वस्त्रों और शस्त्रों से विभूषित एक ही स्थान पर 'सफ़' पर बैठे या खड़े रहते हैं।

---

१ वाय का अर्थ है—हाय, शोक दुख।

२ यह व्यक्ति यजीद की ओर था। हरत इमाम साहब तथ उनके कुटुम्बियों आदि के प्रति इसने बुरा व्यवहार किया था इसी ने हजरत इमाम साहब का सर काटा था।

तमाशा के बीच में यदि वस्त्र बदलने की आवश्यकता होती है तो उस्ताद या सूत्रधार इस काम में सहायक होता है। प्रत्येक पात्र के पास उसका भाग पद्य में लिखा मौजूद रहता है। कोई यदि कुछ भूल जाता है तो सबके सामने ही तुरन्त कागज देख कर फिर स्मरण कर लेता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि उस्ताद ही सहायता दे देता है। क्योंकि उसके हाथ में पूरा भाग रहता है। इस प्रकार विशेष ढङ्ग से मुहर्रम की पहली दस रातों में कर्बला की घटना का दृश्य (नाटक) दिखाया जाता है।

उक्त नाटक धार्मिक भाव को उत्तेजित करता है। तमाशा करने के भाव से लोग इसे नहीं सीखते। इस कारण नाटक खेलने वाले प्रायः इस विद्या के रहस्यों में नितान्त कच्चे होते हैं। लड़कों और स्त्रियों के स्वांग बहुधा छोटे छोटे लड़के करते हैं, जो प्रायः अमीर और बड़े आदमियों के होते हैं। ये लोग इस तमाशा में भाग लेने को बहुत अच्छा समझते हैं।

भारत के सुप्रसिद्ध मुसलमान विद्वान स्वर्गीय मौलाना शिब्ली ने सन् १८९५ में रूम, मिस्र तथा शाम का भ्रमण किया था। उन्होंने अपने यात्रा-ग्रन्थ में कुस्तुन्तुनिया के मुहर्रम की बाबत जो कुछ लिखा है उससे भी भलीभाँति पता

कुस्तुन्तुनिया का मुहर्रम

चलता है कि उस देश में मुहर्रम किस प्रकार मनाया जाता है। मौलाना साहब लिखते हैं—यहाँ (कुस्तुन्तुनिया) का मुहर्रम भी वर्णन योग्य है। ईरान के निवासी जो भिन्न भिन्न कारणों से यहाँ रहते सहते हैं उनकी संख्या पचास साठ हजार से कम नहीं है। बहुत से सरकारी मुहकम में नौकर हैं। बहुत से व्यापारी, कारबारी और मजदूर हैं। यद्यपि ये लोग नगर के सारे भागों में फैले हुए हैं तथापि वालदः खानः के महल्ले में इनकी संख्या बहुत ज्यादा है।

मुहर्रम के समय में धूमधाम की सभाएँ और रोने-धोने के कार्य अधिकांश उक्त महल्ले में ही होते हैं। सभाओं में यहाँ हृदयविदारक बातों का चलन नहीं। केवल हदीस[1] पढ़ी जाती है। और वास्तव में शोक-सभा का उद्देश भी यही है। साधारणतया ऐसा होता है कि पहले मेम्बर[2] के समीप एक मनुष्य खड़ा होकर जबानी जनाब

---

१ हदीस शब्द का अर्थ है—बात, नई बात। किन्तु यहाँ उस बात से अभिप्राय है जो हजरत मुहम्मद साहब ने स्वयं की। अथवा करने के लिये आज्ञा दी। या जो बात आपके सम्मुख हुई किन्तु आपने उससे करने वाले को नहीं रोका।

२ मस्जिदों में पत्थर या लकड़ी आदि की एक छोटी सीढ़ी सी बनी होती है। उस पर बैठकर या खड़े होकर व्याख्यान या उपदेश दिया जाता है।

अमीर (हजरत अली साहब) और हजरत इमाम हुसैन साहब के गुणों और सच्चरित्रों के विषय में पद्य पढ़ता है। फिर एक योग्य विद्वान् मेम्बर पर बैठ कर कर्बला की बातों को उपदेश के ढङ्ग पर बहुत अच्छी तरह वर्णन करता है।

मुझे इस बात पर बड़ी प्रसन्नता हुई कि तुर्क लोग प्रायः इन सभाओं में बड़े शिष्टाचार तथा श्रद्धा के साथ सम्मिलित होते हैं। यहाँ तक कि तुर्कों के कारण ही एक दो स्थनों को छोड़कर बाकी सारी सभाओं में जो उपदेश होता है वह तुर्की भाषा में होता है।

शोक मनाने के कई ढङ्ग हैं। और उनमें से कई बड़े विचित्र तथा प्रभावशाली हैं। सबसे निचले दर्जे का शोक मनाना यह है कि बड़े जोर से छाती पीटते हैं। यहाँ तक कि उस स्थान का मांस सूज आता है। दूसरा ढङ्ग जंजीरों द्वारा शोक मनाते हैं। ये लोग छाती या पीठ पर इतने जोर से जंजीरें मारते हैं कि दूर तक सुनाई पड़ता है। तीसरा ढङ्ग तलवारों द्वारा शोक मनाने का है। और वह कतल की रात से बहुत सम्बन्ध रखता है। शोक मनाने वाले हाथों में नङ्गी तलवारें लिए कतार बाँध कर खड़े होते हैं और बड़े साहस तथा उत्साह के साथ 'हाय हुसैन हाय हुसैन' करते जाते हैं। और सिर तथा कन्धों पर तलवारें

शोक के विचित्र ढङ्ग

मारते हैं। घावों से रक्त की छींटें उड़ उड़कर सारे बदन पर पड़ती हैं। और वह शोक का घेरा रण-क्षेत्र बन जाता है। इस शिक्षाप्रद दृश्य को देखने के लिए बहुत से लोग एकत्र हो जाते हैं और बड़ी कठिनता से शोक मनाने वालों के घेरे तक पहुँच पाते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि मौलाना शिबली की यात्रा के आज तीस वर्ष से भी अधिक बीत चुके हैं परन्तु यह एक ऐसी बात है जिसमें यदि तबदीली हुई भी होगी तो बहुत ही कम। तुर्की में तुर्क ही बसते हैं। वे लोग सुन्नी मुसलमान हैं। और कुस्तुन्तुनिया तुर्की का प्रधान नगर है। इस प्रकार बहुत कुछ इस बात का परिचय मिल जाता है कि मुसलमानों के एक प्रधान देश में, जहाँ सुन्नी मुसलमान बसे हुए हैं, मुहर्रम किस प्रकार मनाया जाता है। पाठक उक्त दोनों प्रधान नगरों के मुहर्रम से इस बात को भी भली भाँति जान सकते हैं कि शियों और सुन्नियों के देश में मुहर्रम मनाने की क्या रीति है।

भारत का मुहर्रम तो पाठकों ने देखा ही होगा। इसके सिवा भारत तथा अन्य स्थानों के मुहर्रम में कितना अन्तर है! एक मुसलमान लेखक का ही कथन है कि रूम, मिस्र, शाम, बगदाद काबुल में ताजिया बनाने का दस्तूर नहीं; और कुस्तुन्तुनिया और ईरान के वर्णन से यह सिद्ध भी होता है।

२. मौलूद शरीफ और बारावफात

मुसलमानों में जो सन् प्रचलित है वह हिजरी कहलाता है। इसी सन् के रबीउल अव्वल[1] नामी तीसरे मास की बारहवीं तारीख हजरत मुहम्मद साहब की जन्म-तिथि मानी जाती है। फलतः यह तिथि तो शुभ मानी ही जाती है परन्तु उक्त मास भी अच्छा माना जाता है। इसी कारण उक्त मास को शहर मीलाद कहते हैं क्योंकि शहर का अर्थ अरबी में मास है और अरबी में मीलाद का अर्थ है—पैदा होने का समय। अर्थात् वह मास जिस में हजरत मुहम्मद साहब पैदा हुये थे। इसी विचार से रबीउल् अव्वल का एक और नाम 'शहर मौलदुल नबी' भी है।

अस्थियत क्या है

संसार में वह मुसलमान अधिक हैं जो प्रायः सुन्नी कहलाते है। अतः संसार भर के सुन्नी लोग बारा रबीउल अव्वल को उत्सव मनाते हैं जिसे 'मौलूद शरीफ' बोला जाता है। अब यह जान लेना चाहिये कि मौलूद अरबी भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है—उत्पन्न हुआ बालक और शरीफ का अर्थ है—भलामानस, शुभ, पवित्र

---

१ रबीउल अव्वल के निमित रबीउल ऊला शब्द भी प्रयोग में आता है।

अर्थात हजरत मुहम्मद साहब के पवित्र जन्म के उपलक्ष में उत्सव जिसको कि हजरत मुहम्मद साहब की जन्म गाँठ मनाने का उत्सव कहना अनुचित नहीं प्रतीत होता।

हजरत मुहम्मद साहब सन् ६३२ई० में मरे थे पर उनकी जन्मगांठ मनाने की प्रथा बहुत दिनों बाद चली थी। बारवीं शताब्दी ईस्वी के अन्त में मैसोपोटामिया देश के मूसल नगर में एक बड़े महान् व्यक्ति थे। उन्होंने ही वास्तव में मौलूद शरीफ की प्रथा चलाई थी। उन्हीं को देखकर अरबल[1] के बादशाह अबूसईद मुजफ्फर ने सन् ६०४ हिजरी अर्थात् सन् १२०७ ई० में सबसे प्रथम एवं अच्छे ढंग पर उत्सव मनाया। उसमें बहुत से लोग सम्मलित हुए। इसके बाद ऐसा हुआ कि प्रति वर्ष लोग मौलूद के दिन कुछ दान-पुण्य करते थे। शुभ कार्य करते थे। आनन्द मंगल मनाते थे।

प्रथा का चलन

ऐसा प्रतीत होता है कि जब मौलूद का कुछ प्रचार हुआ तो कुछ विद्वानों ने उत्सव को अधर्म का अंग बतलाया और विरोध किया पर हजरत मुहम्मद साहब के व्यक्तित्व को लोग बड़ी आदर-दृष्टि से देखते हैं। इस

---

१ यह स्थान मेसोपोटामिया में मूसल नगर से पूर्व व दक्षिण की ओर है।

कारण उनके जन्म दिन पर उत्सव मनाना अच्छा ही समझा और इसके समर्थन में बहुत कुछ लिखा। फलतः एक विद्वान ने मौलूद की पुष्टि में एक पुस्तक लिखी। उसको बादशाह की सेवा में भेंट की तो बादशाह ने एक हजार अशरफियाँ भेंट के रूप में दीं।

हजरत मुहम्मद साहब को मुसलमान लोग जिस आदर दृष्टि से देखते हैं उसके जतलाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इसी का फल है कि मौलूद के उत्सव का प्रचार बहुत जल्द मुसलमानों में चल गया। भारत में प्रायः सब लोग रात्रि को किसी शुद्ध स्थान में एकत्र होते हैं। कोई विद्वान् हजरत मुहम्मद साहब के सम्बन्ध में कुछ पढ़ता है और उनकी प्रशंसा में पद्य भी पढ़ता है। जब पाठ-कर्म समाप्त हो जाता है तो उपस्थिजनों को मिठाई दी जाती है अथवा भोजन कराया जाता है।

भारत में कैसे होता है

कभी कभी ऐसा भी होता है कि मौलूद शरीफ होने की सूचना लोगों को प्रथम दी जाती है कि अमुक स्थान पर अमुक समय मौलूद होगा। इससे सिवा उस स्थान को यथाशक्ति सजाया जाता है। सुगन्धित वस्तु जलाई जाती है। खूब रोशनी की जाती है और जब हजरत मुहम्मद के जन्म का वर्णन व्याख्यानदाता करता है सभा के लोग

श्रद्धाभक्ति से खड़े हो जाते हैं।

अब यह भी जान लेना चाहिए कि भारत में आजकल यह बात आवश्यक नहीं रही कि केवल बारा रबीउल् अव्वल को ही हजरत साहब की जन्म-स्मृति में मौलूद शरीफ हुआ करे बल्कि मौलूद शरीफ होना अब साधारण बात हो गई है। भिन्न भिन्न समयों में मौलूद शरीफ हुआ करता है। किसी की कोई मनोकामना पूरी हो जाती है तो वह उसके उपलक्ष में मौलूद शरीफ कराता है। लोग श्रद्धापूर्वक उसमें सम्मिलित होते हैं और मौलूद शरीफ के अवसर पर बँटने वाली मिठाई को इस प्रकार से लेते हैं जिस प्रकार से सत्यनारायण की कथा का प्रसाद हिन्दू लोग लिया करते हैं।

अब अन्त में यह जान लेना चाहिये कि शिया लोग मौलूद नहीं किया करते और वहाबी मुसलमान तो घोर विरोध किया करते हैं।

वहाबी मुसलमानों का विरोध

राजपूताना की रियासत टोंक के नवाब मुहम्मद अली खाँ बहादुर[1] ने इसका घोर विरोध किया था। इनके सिवा भोपाल के नवाब सिद्दीक हसन खाँ साहब ने भी मौलूद का घोर विरोध किया था। एक सुन्नी ने अपने घर में मौलूद शरीफ की सभा की थी। नवाब

१ देखो तकवीम इस्लाम—पृष्ठ ५१, ५२

साहब बहुत बिगड़े और उसके घर के खोदने की आज्ञा दी।

बारावफात शब्द बारा और वफात दो शब्दों से बना है। बारा हिन्दी की गिनती है और वफात अरबी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है—जीवन का पूरा हो जाना, मरना। तात्पर्य यह कि बारा मृत्यु की तारीख। हजरत मुहम्मद साहब जिस तारीख को पैदा हुए थे उसी तारीख को उनका प्राणान्त भी हुआ था। वह तारीख है मुसलमानों में प्रचलित सन् हिजरी के तीसरे मास रबीउल् अव्वल की ही बारहवीं तारीख थी। इस कारण इस तिथि के लिये बारावफात शब्द का प्रयोग किया जाता है। पर यह ज्ञात रहे कि बारावफात शब्द केवल भारत ही में प्रयोग में आता है। यह जिस आशय का सूचक भारत में है उस आशय का सूचक भारत से बाहर ईरान, टर्की, मिस्र, या अरब आदि में क्योंकर हो सकता है? जब यह स्पष्ट ही है कि उक्त शब्द में एक शब्द हिन्दी का मिश्रित है।

बाराफात

इसमें सन्देह नहीं कि भारत में हजरत मुहम्मद साहब के जन्म व मरण का मास प्राय: रबीउल् अव्वल है और उक्त दोनों बातों के निमित्त एक ही तिथि भी मानी जाती है। पर जन्म को ही विशेष रूप से लक्ष में रखकर उक्त मास तथा तिथि की महत्ता अधिकांश मुसलमानों में असा-

धारण रीति पर देखी जाती है जैसा कि ऊपर लिखित बातों से स्पष्ट ही है।

अब मैं पाठकों को यह भी बतला देना चाहता हूँ कि

ईरान में

जब मैं ईरान गया तो वहाँ मुझे पता चला कि ईरान में हजरत मुहम्मद साहब की जन्म-तिथि १७ रबीउल्-औव्वल और मृत्यु तिथि सफर मास की २८ तारीख मानी जाती है।

३. मेराज

बहुतेरे मुसलमानों का यह विश्वास है कि एक रात को हजरत मुहम्मद साहब जाग्रत अवस्था में आसमान पर गये। वहाँ उन्होंने बहुत-सी अद्भुत वस्तुएँ देखीं, और उसी समय मुसलमानों के लिये पाँच वक्त की नमाजें नियत की गईं। अतः इसी पुण्य-स्मृति में मुसलमान लोग जो त्योहार मनाते हैं, उसका नाम 'मेराज' है। मेराज की घटना रात के समय हुई थी, इस कारण मेराज को 'शब-मेराज' या 'शबे-मेराज' भी कहा जाता है।

अरबी भाषा में एक शब्द 'औरुज' है, जिसका अर्थ है। ऊपर चढ़ना, उत्थान उसी से 'मेराज' शब्द बना है। 'शब' शब्द का अर्थ है—रात। पर यह शब्द फारसी भाषा का है। अरबी में रात के लिये 'लैल' शब्द प्रयोग में लाया

जाता है। वस्तुतः यह फारसी भाषा तथा सभ्यता का प्रभाव है कि मेराज के साथ प्रायः फारसी का शब्द 'शब' ही लगाया जाता है। इसके सिवा मेराज को श्रद्धा या आदर के कारण 'मेराज शरीफ' भी कहा जाता है, क्योंकि शरीफ का अर्थ है—श्रेष्ठ, भला या नेक।

अब यह भी ज्ञात रहे कि बहुतेरे पढ़े-लिखे मुसलमान यह नहीं मानते कि हजरत मुहम्मद साहब अपने पंच-भौतिक शरीर सहित आसमान पर गए थे। बल्कि ऐसे सुशिक्षित समुदाय का मत है कि हज़रत की केवल जीव-आत्मा गई थी। अथवा यह कि हज़रत ने मेराज-सम्बन्धी बातों को स्वप्न में देखा था। पैगम्बर का स्वप्न सच्चा हुआ करता है, इसलिये मेराज-विषयक बातें सच्ची हैं।

कुरान का मत

कुरान शरीफ़ में मेराज-विषयक बातें बहुत ही थोड़ी हैं। अतः कुरान में बनी इसराईल नामक सतरहवीं सूरत (भाग) के आरम्भ में आया है:—

"सुब्हानल् लज़ी असूरा बे अब्दही लैलम् मिनल् मस्-जिदिल हरामे एलल् मस्जिदिल् अक़्सा" इत्यादि।

भावार्थ—वह खुदा पवित्र है, जो रात्रि के समय अपने दास (हज़रत मुहम्मद साहब) को मस्जिद हराम (मक्का) से मस्जिद अक़्सा (यरूशलीम) तक ले गया,

जिसके चारों ओर हमने बरकतें उतारी हैं, ताकि अपने दास को हम अपने कुछ चिन्ह दिखावें। वस्तुतः वह (खुदा) सुननेवाला और देखनेवाला है।

उक्त स्थान के सिवा मेराज के विषय में संकेत मात्र चर्चा इसी सूरत में और भी है। परन्तु विस्तारपूर्वक हाल उन धर्म-ग्रन्थों में है, जिनको हदीस कहा जाता है।

हदीसों का मत

सच तो यह है कि हदीसों में मेराज के सम्बन्ध में जो कुछ आया है, वह सब-का-सब यहाँ दिया नहीं जा सकता, और न उस सब के सब को सारे मुसलमान ही ठीक मानते हैं। इसीलिये यहाँ पर जो कुछ हम लिखना चाहते हैं, वह केवल 'सहीह मुस्लिम' व 'सहीह बुख़ारी' नामी हदीसों के आधार पर लिखेंगे, जो कि मुसलमानों में विशेष रूप से माननीय हैं। अस्तु हज़रत अबूज़र गफ़ारी साहब का कथन है कि हजरत मुहम्मद साहब मक्का में थे। उनके घर की छत खुली, और हज़रत जबरील साहब उतरे। उन्होंने पहिले हज़रत मुहम्मद साहब की छाती चीरी। उसको ज़मज़म[1] के पानी से धोया। फिर सोने का एक थाल ईमान और हिकमत से भर कर लाए, और उनको हजरत मुह-

१ मक्का में एक पवित्र कुआँ है, जो जनाब हजरत इस्माईल साहब के पाँव की रगड़ से पैदा हो गया था। लेखक

म्मद साहब की छाती में डाल कर बंद कर दिया। उसके बाद हजरत का हाथ पकड़ कर उनको आसमान पर ले गए। वहाँ हजरत जबरील साहब ने आसमान के दारोगा से खोलने के लिये कहा। उसने पूछा, कौन है? हजरत जबरील साहब ने अपना नाम बतलाया। दारोगा ने फिर पूछा। क्या तुम्हारे साथ कोई और भी है? उन्होंने कहा—हाँ, हजरत मुहम्मद साहब हैं। उसने पूछा—क्या वह बुलाए गए हैं? उन्होंने कहा—हाँ बुलाए गए हैं। अस्तु, जब हजरत मुहम्मद साहब पहिले आसमान पर चढ़े, तो आपको एक ऐसा व्यक्ति दिखाई पड़ा, जिसके दाएँ-बाएँ बहुत-सी परछाइयाँ थीं। जब वह दाहिनी ओर देखता था, तो हँसता था, और जब बाईं ओर देखता था, तो रोता था। हजरत मुहम्मद साहब को देख कर उसने आपका आदर किया। इस पर हजरत ने हजरत जबरील से पूछा कि यह कौन है? उसने कहा—यह हजरत आदम हैं। और इनके बाद दाएँ-बाएँ की परछाइयाँ इन्हीं की सन्तानों की आत्माएँ हैं। दाहिनी ओर वाले स्वर्ग में जायँगे, और बाईं ओर वाले नरक में। इसलिये जब वह दाहिनी ओर देखते हैं, तो हँसते हैं, और जब बाईं ओर देखते हैं तो रोते हैं।

इसके बाद हजरत मुहम्मद साहब हजरत जबरील के साथ दूसरे आसमान पर पहुँचे, तो वहाँ भी पहले की

भाँति प्रश्न व उत्तर हुए। इसी प्रकार क्रमानुसार आप छठे आसमान पर पहुँचे, और प्रत्येक आसमान पर कोई न कोई बड़ा नबी—हजरत मूसा, हजरत ईसा और हजरत इब्राहीम साहब के समान मिलता गया। अन्त को हजरत जबरील साहब आपको और ऊपर ले गए, और उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ खुदा की कलम चलती हुई सुनाई पड़ती थी।

इस अवसर पर खुदा ने हजरत मुहम्मद साहब के अनुयायियों पर पचास समय की निमाजें निश्चित कीं।

निमाजों की नींव

ऐसी आज्ञा पाकर आप हजरत मूसा साहब के पास आये। उन्होंने पूछा खुदा ने आपके अनुयायियों पर क्या निश्चित किया। आपने कहा पचास वक्त की निमाजें। उन्होंने कहा कि खुदा के पास दुबारा जाइये आपके अनुयायी इतना बोझ नहीं उठा सकते। फलतः हजरत मुहम्मद साहब खुदा के पास गये। और खुदा ने पचास में से कुछ (पाँच) निमाजें कम कर दीं। जब आप वापस आये तो हजरत मूसा साहब ने कहा कि फिर खुदा के पास जाइये आपके अनुयायी इतने के निमित्त भी शक्ति नहीं रखते। अतः हजरत मुहम्मद साहब के जाने पर खुदा ने फिर एक भाग कम कर दिया। परन्तु जब आंहजरत अर्थात् हजरत मुह-

म्मद साहब फिर हजरत मूसा साहब के पास आये तो उन्होंने कहा कि आपके अनुयायी इतने के निमित्त भी शक्ति नहीं रखते। इस पर आंहजरत फिर खुदा के पास पहुँचे और खुदा ने घटा कर केवल पाँच निमाजों को नियत किया और कहा कि यद्यपि कुल पाँच निमाजें होंगी किन्तु इन पाँचों में पचास निमाजों का ही फल रहेगा। क्योंकि मेरी आज्ञा में परिवर्तन नहीं हुआ करता।

आंहजरत के लौटने पर हजरत मूसा साहब ने फिर कहा कि आप फिर खुदा के पास जाकर निमाजों में और कमी कराइये। किन्तु आपने उत्तर दिया कि अब तो मुझे लज्जा मालूम होती है। इसके पश्चात आपको 'सिदूर-तुलमुन्तहा' अर्थात् अन्तिम बेरी वृक्ष की सैर कराई गई। वह नाना प्रकार के ऐसे रंगों से ढका था कि आप उसे न पहिचान सके। फिर आपको हजरत जबरील साहब जन्नत (स्वर्ग) में ले गये। वहाँ आपको मोती के भवन दिखाई पड़े और आपने देखा कि जन्नत की मिट्टी में कस्तूरी की सुगन्ध आती है।

उक्त कथन के सिवा और भी कई अनोखे कथन हैं।

विचित्र सवारी

अतः यह भी लिखा है कि गदहे से बड़ा और खच्चर से छोटा सफेद रंग का एक पशु बुराक़ नामी लाया गया था। उसका हर कदम

वहाँ पड़ता था जहाँ उसकी निगाह की अन्तिम सीमा होती थी। उसी पर सवार होकर हजरत मुहम्मद साहब बैतुल्मुकद्दस (यरुशलीम) आये और बुराक को उस कुलाबे में बाँधा जिसमें नबी लोग अपनी सवारी बाँधा करते थे।

हजरत मुहम्मद साहब ने हजरत जब्रील को इस हालत में (आस्मान पर) देखा कि उनके छः सौ पर थे।

हजरत मुहम्मद साहब जब आस्मान पर सिद्रतुल मुन्तहा अर्थात् अंतिम बेरी वृक्ष तक पहुँचे तो मान-मर्यादा वाला श्रेष्ठ खुदा यहाँ तक निकट हुआ कि खुदा और हजरत मुहम्मद के बीच में दो कमानों (धनुषों) अथवा इससे भी कम का अन्तर रह गया।

अब इस अवसर पर यह बतला देना चाहता हूँ कि एक लेखक का कहना है कि मेराज सम्बन्धी बातें सुनकर

कथा की सत्ता

कुछ काफिर (अधर्मी) लोग हजरत अबूबकर साहब के पास जो आपके ससुर और मुसलमानों के पहले खलीफा थे, दौड़े हुए आये और कहा कि आज मुहम्मद साहब लोगों से यह कह रहे हैं कि रात को वह बैतुल्मुकद्दस (यरुशलीम) गये और वहाँ से वापस आये। इस पर हजरत अबूबकर साहब ने पूछा कि क्या सचमुच आप ऐसा ही

कह रहे हैं। लोगों ने कहा कि हाँ। हजरत ने कहा कि मैं तो आपको सच्चा जानता हूँ और इस बात पर दिल से विश्वास करता हूँ। काफिरों ने कहा—आप ऐसी बुद्धि-विरुद्ध बात को खुल्लमखुल्ला क्योंकर ठीक समझते हैं। हजरत ने उत्तर दिया मैं तो इससे भी अधिक बुद्धि-विरुद्ध बात पर विश्वास करता हूँ और स्वीकार करता हूँ कि आपके पास प्रतिदिन आसमान से फरिश्ते आते हैं। निदान उसी दिन से हजरत अबूबकर साहब को 'सिद्दीक' अर्थात् "बड़ा सच्चा' की उपाधि मिली थी।

घटना का समय

इस बात को सब लोग पूर्णतया मानते हैं कि हजरत मुहम्मद साहब जब अपने शत्रुओं के कारण मक्का छोड़कर मदीना चले गये थे उससे पहले ही मेराज की घटना मक्का में हुई थी। और यह घटना किस तारीख को हुई थी इसकी बाबत मुसलमान लेखकों के ही अनेक मत हैं पर मुसलमान लोग मेराज की पुण्य-स्मृति सन् हिजरी के रजब नामी सातवें मास की छब्बीसवीं तारीख को मनाते हैं।

अब अन्त मे मैं यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि स्वर्गीय मौलाना शिबली ने हजरत मुहम्मद साहब का एक विशाल जीवन-चरित्र लिखना आरंभ किया था। किन्तु वह उनके जीवन-काल में समाप्त न हो सका था।

उसी जीवन-चरित्र को मौलाना सैय्यद सुलैमान साहब नदवी ने बहुत कुछ पूरा किया है। वह 'सीरतुन् नबी' के नाम से विख्यात है। उर्दू भाषा में है। और आजमगढ़ से प्रकाशित होकर अनेक पुस्तकालयों में पहुँच चुका है। उसी के तीसरे भाग के पृष्ठ २७१ से ३२८ तक में मेराज विषयक बहुत सी बातें हैं जो कि हदीसों के आधार पर लिखी गई हैं। मेरे विचार से उर्दू जानने वालों को उससे बहुत लाभ पहुँच सकता है। और मुझे भी उस ग्रन्थ से बहुत लाभ हुआ है। अस्तु मैं लेखक महोदय का आभारी हूँ।

४. शबरात

मुसलमानों का त्योहार जो बहुधा 'शबरात' या 'शुब-रात' बोला जाता है वास्तव में 'शब-बराअत' का अपभ्रंश है। शब फारसी भाषा का शब्द है अर्थात् रात और 'बराअत' शब्द अरबी का है इसका अर्थ है—नोटिस, साफ जवाब, चालान चिक अर्थात् वह परवाना, वह हुक्म जिसकी बदौलत सरकारी खजाना से रुपया मिले। अरबी भाषा में रात के लिए 'लैल' शब्द आता है इस कारण शबरात के लिये अरबी शब्द 'लैलतुल बराअत' है।

असलियत क्या है

एक लेख का आशय है कि शबरात को 'लैलतुल

वराअत' इस कारण से कहते हैं कि इसमें लोगों को दोजख (नरक) और पापों से छुटकारा मिलता है। अस्तु यह बड़ा महत्त्वपूर्ण रात है। और इसकी महिमा में अनेक लोगों के विचित्र और अद्‌भुत मत हैं। उदाहरणार्थ—इस रात में भलाई व बुराई पर विचार किया जाता है। अल्लाह साल भर के कामों का हिसाब-किताब करता है। जीवितों को मृतकों से पृथक लिखता है। जीविका के इच्छुकों को जीविका देता है।

सन् हिजरी के शाबान नामी आठवें मास में शबरात का त्योहार आता है और इसके लिये निश्चित तिथि शाबान की पन्द्रहवीं रात्रि है। अर्थात् उक्त मास के बीचो-बीच की तारीख में यह त्योहार पड़ता है। रात्रि में जाग कर खुदा की उपासना करना और कब्रिस्तान में जाकर मृतकों के निमित्त प्रार्थना करना और दिन में रोजा रखना—यह तीनों बातें अच्छी हैं। किन्तु हलवा पकाना या इसका खाना-खिलाना मुख्य समझना धर्मानुकूल नहीं है।

'ओहद' नामक युद्ध में हजरत मुहम्मद साहब के दो दाँत शहीद हो गये थे अर्थात् टूट गये थे। और आपने हलवा खाया था। अतः इस कारण शबरात में हलवा का पकाया जाना ठीक नहीं क्योंकि ओहद का युद्ध शौवाल मास में हुआ

कैसे मनाया जाता है

था। इसके सिवा मसूर की दाल का पकाया जाना अथवा किसी अन्य चीज का अवश्य पकाया जाना, कोई भी मुसलमान विद्वान् धर्मानुसार नहीं बताता।

ईरान पर जब मुसलमानों का अधिकार जमा था उस समय ईरान के अनेक सुप्रसिद्ध घराने भी मुसलमान हो गये थे। इन्हीं में से एक घराना मुसलमानी इतिहासों में बर्मा या बरामक: के नाम से बहुत विख्यात है। इस घराने के लोग अग्निपूजक थे। बगदाद के अभ्युदय काल में इस घराने के कई अच्छे वजीर हो चुके हैं। इन्हीं घराने के लोगों ने शबरात में पहले पहल चिरागों के जलाने अर्थात् धूमधाम के साथ मस्जिदों आदि में रोशनी करने की प्रथा चलाई थी। और यह स्पष्ट ही है कि हिन्दू लोग दीवाली में कैसी रोशनी किया करते हैं। फलतः दीवाली के मुकाबिले में हिन्दुस्तान के मुसलमानों ने शबरात के अवसर पर खूब रोशनी करने में ही अपने धर्म का महत्त्व समझ रखा है। इसके सिवा यह दीवाली धनतेरस का ही प्रभाव समझना चाहिये कि बहुतेरे मुसलमान शबरात के अवसर पर घर लीपना, बरतन बदलना आदि को अच्छा समझने लगे हैं। अन्यथा इस प्रकार की बातों का कोई भी सम्बन्ध वास्तव में शबरात से नहीं है।

अब अन्त में यह कहना है कि शबरात में पटाखा या

आतशबाज़ी आदि छुड़ाने की जो बड़ी धूम-धाम होती है वह भी मुसलमानी धर्म के अनुकूल नहीं है। कोई भी मुसलमान विद्वान इस विषय का अनुमोदक नहीं। बल्कि पिछले वर्ष अर्थात् सन् १९२६ ई० के शबरात पर ख्वाजा हसन निजामी साहब ने अनेक स्थानों में बड़ा उद्योग किया था कि आतशबाजी व पटाखा आदि को मुसलमान बिल्कुल न छुड़ावें। निदान शबरात में मुसलमानों को जो कुछ करना चाहिये उसका वर्णन पहले ही हो चुका है और जो अन्य बातें मुसलमानों में धूमधाम विषयक या मंगल व विनोद की फैली हुई हैं उनमें से बहुतेरी हिन्दू त्यंहारों के मुकाबिले के कारण अथवा उनके प्रभाव के कारण फैल गई हैं। अतः इस सम्बन्ध में यदि कोई निम्नलिखित पुस्तकों को देखे तो इस सम्बन्ध में और कई बातों से भी परिचित हो जायगा—

पटाखों का विरोध

तकवीमुल इस्लाम—लेखक मौ० हकीम अहमद साहब सिकन्दरपुरी—आगरा अखबार प्रेस की छपी हुई है।

अशरफुत् तकवीम—लेखक सैय्यद मुहम्मद मुरतजा अली साहब मुरादाबादी—मैनेजर इस्लामिया बुक एजन्सी मुरादाबाद ने इसको अम्बाला में छपाया है। सन् १३३५ हिजरी।

फ़ज़ायलिश-शहूर-वस्सियाम—लेखक मौ० मुहम्मद रमजान साहब। मैनेजर मुंशी नवलकिशोर प्रेस लखनऊ द्वारा प्रकाशित।

५. ईद

मुसलमान लोग जो त्योहार मनाते हैं उनमें से ईद और बकरीद ही वास्तव में मुख्य हैं। इसमें सन्देह नहीं कि मुहर्रम में गाजे बाजे की बड़ी धूम धाम होती है

इसकी महत्ता

पर मालूम हो कि विशेष रूप से इसकी महत्ता शिया मुसलमानों ही की दृष्टि में है क्योंकि बहुतेरे सुन्नी मुसलमानों के मतानुसार ताजिये घोड़ा आदि बनाना अधर्म है। पढ़े-लिखे धर्मज्ञ सुन्नी मुसलमान ऐसे कार्य से सहमत नहीं। शाम के खारजी मुसलमान इस दिन प्रसन्नता प्रगट करते हैं। देवबन्द (जिला सहारनपुर) में बहुत से सुन्नी मुसलमान हैं। वहाँ अरबी का सबसे बड़ा विद्यालय है किन्तु वहाँ मुहर्रम की छुट्टी नहीं होती और न मुहर्रम मनाया जाता है। इसी प्रकार बारावफात व शबरात आदि के विषय में बड़ा मतभेद है। पर ईद या बकरीद का त्योहार ऐसा है कि उसे सारे मुसलमान मानते हैं, चाहे वे किसी भी समुदाय तथा सम्प्रदाय के हों।

मुसलमानी मजहब से अधिक पुराना ईसाई धर्म और इससे भी अधिक पुराना यहूदी धर्म है। पिछले दोनों धर्मों के अनुयायी जिनको अपना पूज्य मानते हैं उनको मुसलमान भी आदर की दृष्टि से देखते हैं। अतः उक्त दोनों धर्मवालों के धर्म कर्म की कुछ बातों को मुसलमानों ने भी ले लिया है, यही कारण है कि मुसलमानों में भी खुशी के त्योहार नियत किये गये, क्योंकि उक्त दोनों धर्म-वालों में खुशी के कई त्योहार हैं।

ईद का अर्थ

अरबी में एक शब्द तथा धातु है 'औद' उसका अर्थ लौटाना, फिरना—है। इसी से ईद शब्द बना है क्योंकि वह लौटकर आया करती है। पर 'ईद' शब्द से प्रसन्नता' तथा 'खुशी' का अर्थ भी निकलता है कारण यह कि ईद के दिन खुशी मनायी जाती है। कुरान शरीफ जो मुसलमानों का मुख्य धर्मग्रन्थ है उसके सूरतुलमायदः नामी पाचवीं सूरत (खण्ड) की ११४ आयत (अंश) में आया है—

"काला ईसबनो मर्यमा अल्लाहुम्मा रब्बना अन्‌जिल अलैना मायद तन मिनस्समाये तकूना लना ईदन ले। औवलना व आखरना व आयतन मिनक वरजुकना अन्ता खैरुलराजिकीन" भावार्थ:—"श्रीमती मरियम के पुत्र ईसा-मसीह ने कहा था कि ऐ अल्लाह तू हमारा पालनहारा

है। तू हम पर (हमारे लिये) बढ़िया भोजन आकाश से उतार (भेज), ताकि उस भोजन का उतरना हमारे अगले और पिछले लोगों के लिये ईद हो और यह तेरी ओर से हमारे निमित चिह्न होगा। तू हमें रोजी दे, तू ही सर्वोपरि जीविका देनेवाला है।"

ईसामसीह को ईसाई लोग ईश्वर का पुत्र मानते हैं। मुसलमान ईश्वर का पुत्र नहीं मानते। परन्तु अपना पूज्य पैगम्बर (ईश्वरीय दूत) अवश्य मानते हैं। उन्हीं की ओर से उपर्युक्त प्रार्थना है। ऐसा ज्ञात होता है कि ईश्वर ने प्रार्थना स्वीकार की और खुशी के त्योहार की नींव पड़ी। और इस प्रकार मुसलमानों में भी खुशी के त्योहार का चलन हुआ। इसके सिवा कुरान शरीफ में ईद का कुछ वर्णन नहीं और न अन्य किसी ग्रन्थ से ही ईद के सम्बन्ध में विशेष रूप से कुछ पता चलता है। निदान ऐसा समझना अनुचित न होगा कि जिस प्रकार हिन्दुओं के प्रचलित त्योहारों में कुछ त्योहारों को आर्यसमाजी लोग भी मनाया करते हैं, उसी प्रकार यहूदियों तथा ईसाई लोगों के त्योहारों को मुसलमानों ने भी अपना लिया है।

ईद का त्योहार रमजान मास के रोजे की समाप्ति पर मनाया जाता है और सन् हिजरी के दसवें मास

शाबान की प्रथम तारीख को पड़ना है। रमजान के महीने में रोजा रखना परम धर्म समझा जाता है, पर ईद के दिन से रोजा खुल जाता है, उसके रखने की आवश्यकता नहीं रहती। इस कारण ईद को 'ईदुल्फितर' कहते हैं और सरकारी छुट्टियों की जो सूची छपा करती है उसमें वही शब्द रहा करता है। अतः अब यह जानना चाहिये कि 'अल्फितर' का अर्थ है—रोजा खोलना अथवा रोजा खोलनेवाला। इस ईद का महत्त्व बकरीद से कम है, इस कारण इस ईद का नाम 'ईद सगीर' अर्थात् 'छोटी ईद' भी है।

सिवई खाने की चाल

जो बात हजरत मुहम्मद साहब स्वयं करते थे अथवा किसी को करने के लिये कहते थे उसका करना मुसलमानों के लिये आवश्यक माना जाता है। कई ग्रन्थों से पता चलता है कि ईद के दिन हजरत मुहम्मद साहब छुहारा खाया करते थे, इसीलिये मुसलमानों में भी छुहारा दूध आदि खाने-खिलाने की प्रथा है पर केवल भारत तथा ब्रह्मा के ही मुसलमानों में सिवई खाने का अधिक चलन है। सिवई खाने की आज्ञा किसी इसलामी धर्म-ग्रन्थ में नहीं है। इस विषय में मुझे तो यह प्रतीत होता है कि यह प्रथा मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रभाव से चली। हिन्दू लोग

श्रावणी और अनन्तचतुर्दशी को सिवई खाते हैं। यह दोनों खुशी के त्यौहार हैं। सिवई स्वादिष्ट भोजन है इसी कारण संभवतः मुसलमानों में सिवई की चलन हुई हो। दूसरी बात जानने योग्य यह है कि मुसलमान लोग जिस ढंग से अपना मास मानते हैं उसके अनुसार उनका त्योहार कभी हिन्दुओं के किसी मास में पड़ता है, और कभी किसी मास में। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि ईद किसी समय श्रावणी और अनन्त चतुर्दशी के बीच में अथवा आसपास में पड़ी होगी और हिन्दुओं की देखादेखी किसी बादशाह या बड़े भारी आदमी ने भी सिवई खायी होगी, क्योंकि सिवई स्वादिष्ट भोजन होता है। इस प्रकार सिवई खाने का चलन शनैः शनैः अधिक हो गया होगा।

मुसलमान लोग ईद के दिन कुछ दान-पुण्य करते हैं साफ-सुथरे कपड़े पहनते हैं, परस्पर एक दूसरे से मिलते हैं, पर इन सब बातों से बढ़कर ईद की निमाज है। लोग प्रसन्नता के दिन भी ईश्वर-उपासना को न भूलें, इस कारण निमाज बड़ा आवश्यक कर्तव्य है। पर इसमें सामाजिक संघटन का रहस्य भी है। जो लोग सांसारिक झंझटों में फँसे रहने के कारण बहुत कम या बिलकुल एक दूसरे से नहीं मिल पाते वे लोग भी एक दूसरे से मिल लेते हैं। ईद की निमाज के लिए सारे मुसलमानों का एक ही स्थान

पर एक ही समय एकत्र होना और फिर एक साथ ही झुकना उठना बैठना अद्वितीय संघटन तथा नियम का सूचक है, जिसकी प्रशंसा मुसलमानों के कट्टर विरोधी भी करते हैं, और नेपोलियन ऐसा व्यक्ति भी इस अपूर्व दृश्य को देख कर अचम्भे में हो गया था।

ईद के दिन निमाज से पहले कुछ खा लेना चाहिए। यह निमाज यात्री, दास रोगी, लँगड़े, अंधे और स्त्री के निमित्त आवश्यक नहीं है।

एक सम्भावना

यह बात लोग जानते ही हैं कि कई वर्षों से हमारे स्वदेश प्रेमी भाई बड़े जोरों के साथ यह उद्योग कर रहे हैं कि विदेशी वस्त्रों का विशेषतः बहिष्कार हो। इस बात के ही कारण कई स्थानों पर तो लोगों ने विदेशी वस्त्रों को जलाया भी। सन् १९२९ ई० के ४ मार्च की बात है कि महात्मा गांधीजी ने स्वयं कलकत्ता नगर में विदेशी वस्त्रों को जलाने का उद्योग किया पर पुलिस* ने उन्हें पकड़ा। इस देश में बड़ी सनसनी फैली। अतः २४ मार्च को जब होली का दिन पड़ा तो बहुत स्थानों पर लोगों ने विदेशी वस्त्रों को जलाया।

---

* नगर में सड़क पर आग जलाना नियम के विरुद्ध है इस कारण महात्माजी दोषी ठहराये गये थे न कि विदेशी कपड़ा जलाना दोषपूर्ण था या है।

निदान जिस प्रकार होली के दिन विदेशी वस्त्र जलाने की बात राष्ट्रीय विचार वाले लोगों को सूझी उसी प्रकार संभव है कि मुसलमानों में ईद के दिन मिलने तथा एक दूसरे के यहाँ कुछ खाने की प्रथा हिन्दुओं से ली गई हो क्योंकि उक्त दोनों बातें हिन्दुओं में होली के दिन हुआ ही करती हैं। इसके सिवा यह बात अवश्य ही कई बार हुई कि ईद व होली के त्योहार १५ दिनों के हेर-फेर में हुए क्योंकि मुसलमानों में मास व तिथि आदि का चलन जिस ढंग से है उसके अनुसार ईद का समय बदलता ही रहता है।

६. बकरीद

मुसलमानों का एक त्योहार हमारे यहाँ 'बकराईद या बकरीद' के नाम से प्रसिद्ध है। बहुतों का ख्याल है कि बकराईद शब्द वस्तुतः 'बकरा' और 'ईद' शब्दों से बना है, जिसका तात्पर्य है वह त्योहार जिसमें बकरा मारा जाय।

शब्द का वास्तविक स्वरूप

परन्तु वास्तविक बात यह है कि बकरीद या बकराईद शब्द असल में बकरीद है और 'बकर' और 'ईद' शब्दों से बना है। बकर का अर्थ अरबी-भाषा में बैल अथवा गाय के हैं और ईद वास्तव में अरबी के 'औद' शब्द से बना है जिसका अर्थ है—लौटना, फिरना। ईद का त्योहार प्रत्येक

वर्ष लौटा करता है, आया करता है इस कारण ईद नाम से विख्यात हुआ। ईद शब्द प्रसन्नता तथा खुशी का बोधक है। कारण यह कि इस दिन आनन्द-मंगल हुआ करता है। निदान बकरीद शब्द का तात्पर्य यह हुआ कि खुशी का वह त्योहार या दिन जिसमें गाय या बैल की कुरबानी होती है।

भारत के बहुतेरे मुसलमान लोग बकरीद के दिन गाय या बैल की कुरबानी को सुगम व अच्छा समझते हैं अथवा यह कहना चाहिए कि इन्होंने गाय या बैल की कुरबानी को महत्ता का एक विशेष स्वरूप दे रखा है। इसी कारण इस त्योहार का नाम यहाँ बकरीद पड़ गया है। पर यह बात भी भली-भाँति ज्ञात रहे कि इस शब्द का चलन भारतवर्ष की ही सीमा के भीतर है, क्योंकि यह भारत में ही गढ़ा गया है। अरबी या फारसी भाषा तथा साहित्य में इस शब्द का कहीं प्रयोग नहीं है। ईरान एक मुसलमानी देश है। वहाँ का उत्तराधिकारी भी मुसलमान है। वहाँ गाय बैल होते हैं। सन् १९२९ ई० (सन् १३४७ हिजरी) में मैं वहाँ भ्रमणार्थ गया था। बकरीद का दिन मुझे वहीं पड़ा था। जिस भाग में मैं था उसमें कहीं गाय की कुरबानी नहीं हुई थी। दुम्बे भेड़ों ही की कुरबानी वहाँ हुई थी। इसके सिवा मुझे यह भी बतलाया गया था कि दुम्बे

की कुरबानी का ही चलन साधारणतया सारे देश में है। गाय या बैल की कुरबानी शायद ही कभी कोई करता हो तो हो।

अरबी में इस त्योहार का नाम 'ईदुल अजहा' है। यह शब्द 'ईद' और 'अजहा' से बना है। ईद का अर्थ खुशी और अजहा का अर्थ है कुरबानी का दिन अर्थात् वह ईद या खुशी का दिन (त्योहार) जिसमें कुरबानी की जाती है। परन्तु हम किसी किसी जन्त्री या छुट्टियों की सूची में 'ईदुलजुहा'—शब्द लिखा हुआ देखते हैं, जो वस्तुतः 'ईदुल अजहा' से ही बिगड़ कर बना हुआ है। इस्लामी-जगत् में इस त्योहार की महत्ता बहुत ज्यादा है इस कारण इसको 'ईद कबीर' अर्थात् बड़ी ईद कहा जाता है। पर इस विचार से कि इस ईद के दिन 'कुरबानी का होना' एक मुख्य कार्य है इसलिए इसे 'ईद कुरबाँ' कहते हैं। इसके सिवा 'योमन नहर' भी इस ईद का एक नाम है। अरबी में योम शब्द का अर्थ है—दिन और नहर शब्द का अर्थ है—ऊँट को मारना, छाती पर घाव मारना। तात्पर्य यह कि वह दिन (त्योहार) जिसमें ऊँट की कुरबानी होती है। क्योंकि अरब में ऊँट एक प्रधान पशु है इसी कारण इस त्योहार का नाम योमुन् नहर पड़ा है। इसके सिवा यह भी ज्ञात रहे कि टर्की

व मिस्र में इस त्योहार का नाम 'ईद बैराम' अर्थात् 'आनन्द-मंगलमय खुशी का दिन' है। किन्तु भारतवर्ष में अधिक प्रचलित शब्द बकरीद ही है। इसी कारण मैंने इस शब्द का ही अधिक प्रयोग किया है। बकरीद, ईदुल अजहा, ईद कबीर, ईद बैराम व ईद कुरबान आदि शब्दों में से कोई भी शब्द कुरान में नहीं आया है।

उर्दू के एक सुप्रसिद्ध कवि सैयद इन्शा हुये हैं। उनका देहान्त सन् १८१४ ई० में हुआ था। उन्होंने 'ईद कुरवाँ' शब्द को एक उर्दू पद्य में बड़ी खूबसूरती के साथ निवाहा है—

यह अजीब माजरा है कि बरोज ईद कुरबाँ।
वही जबह भी करे हैं वही ले सवाब उलटा।

یہ عجیب ماجرا ہے کہ بروز عید قرباں
وہی ذبح بھی کرے ہے وہی لے ثواب الٹا

मैं बतला चुका हूँ कि सन् १९२९ ई० में बकरीद का दिन मुझे ईरान में पड़ा था। उस समय अनेक पठित व अपठित ईरानियों से बकरीद के सम्बन्ध में मैंने बात-चीत की थी। मैंने जान-बूझ कर 'बक्रीद' शब्द का प्रयोग किया था ताकि मालूम कर सकूँ कि भारत के गढ़े गये इस शब्द को लोग समझ सकते हैं कि नहीं। परन्तु इसे कोई न समझ सका। 'ईदुल अजहा' शब्द को केवल पढ़े-लिखे और 'ईद कुरवाँ' को सब लोग समझ सके क्योंकि

'ईद कुरबाँ' शब्द वहाँ अधिक प्रचलित है।

मेरा अनुमान ही नहीं बल्कि विश्वास है कि जिस प्रकार 'बकरीद' शब्द को ईरान में कोई नहीं समझ सका उसी प्रकार किसी अन्य मुसलमानी देश में यदि इस शब्द का प्रयोग किया जायगा तो वहाँ भी कोई व्यक्ति कदापि न समझ सकेगा कि इसका वास्तविक अभिप्राय क्या है।

त्योहार का आरम्भ

मुसलमान लोगों के विचार से जो बड़े-बड़े पैगम्बर (ईश्वरीय दूत) हुए हैं उनमें से एक हजरत इब्राहीम साहब भी थे। इनकी सुप्रसिद्ध उपाधि 'खलीलुल्लाह' भी है। इन्होंने ही मक्का में काबा मन्दिर बनाया था जो सारे मुसलमानों की दृष्टि में बड़ा पवित्र स्थान है और जहाँ मुसलमान लोग जाना अपना धर्म समझते हैं। अनेक इतिहासों में लिखा है कि हजरत इब्राहीम ने स्वप्न में देखा कि खुदा ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं अपने प्यारे पुत्र को उसके निमित्त बलिदान कर दूँ। इसी आज्ञा के अनुसार आप अपने प्यारे पुत्र को मक्का के समीप उस स्थान पर ले गये जो अब कुर्बानी का पवित्र स्थान समझा जाता है। वहाँ पहुँच कर हजरत ने अपने पुत्र को अपने विचार से आगाह किया और पुत्र ने भी अपने आपको उस कार्य के लिये बिना उज्र के तैयार बतलाया।

हजरत इब्राहीम जब छुरी लेकर बलि चढ़ाने के लिए तैयार हुए तब पुत्र ने निवेदन किया कि उचित यह है कि आप मुझे पृथ्वी पर मुँह के बल लिटा दें और अपनी आँखों पर पट्टी बाँध लें ताकि ऐसा न हो कि मारते समय आपकी नजर मेरे मुख पर पड़े और प्रेम के वशीभूत हो कर आप अपना कर्तव्य-पालन न कर सकें।

पुत्र की ऐसी बातें सुनकर हजरत बड़े प्रसन्न हुए और उसी के मतानुसार उसके गले पर छुरी फेरी। किन्तु ईश्वर की आज्ञा से हजरत जब्रील फरिश्ता ने छुरी को उलट दिया और एक दुम्बा वहाँ अपने आप प्रगट हो गया। उसी को खुदा के निमित्त हजरत ने वलिदान में चढ़ाया।

इतिहासों से ऐसा भी पता लगता है कि हज़रत इब्राहीम साहब के दो पुत्र थे। एक उनकी दासी बीबी हाजरः के पेट से हज़रत इस्माईल थे और दूसरे हज़रत इस्हाक़ साहब उनकी असली धर्मपत्नी बीबी सारः के पेट से थे। इनमें से हज़रत इस्माईल साहब बड़े और हज़रत इस्हाक़ साहब छोटे थे। मुसलमानों का मत है कि हज़रत इब्राहीम साहब ने हज़रत इस्माईल साहब को कुरबानी के निमित्त तैयार किया था। पर यह ज्ञात रहे कि हज़रत इब्राहीम को ईसाई लोग भी अपना आदरणीय पैगम्बर मानते हैं। इनका मत है कि हज़रत इस्हाक़ साहब

कुरबानी के निमित्त थे। फलतः इन्हीं दोनों में से किसी एक के उपलक्ष में वकरीद के त्योहार की नींव पड़ी है। निदान यह जान लेना चाहिये कि यह त्योहार मुसलमानों में वस्तुतः यहूदियों से आया है।

कुरान का मंत

कुरान शरीफ़ में हज़रत इब्राहीम साहब तथा उनके दोनों पुत्रों की चर्चा है। परन्तु यह चर्चा कुरवानी के विषय में विस्तृत नहीं है। इसके सिवा कुरबानी की महिमा बतलाई गई है। हमारे देश में कई स्थानों पर मुसलमानों ने कुरवानी के पशु विशेषतः गाय या बैल को सजा-बजाकर जलूस निकालना अच्छा माना, किन्तु ऐसा करने के लिये कुरान-शरीफ़ में स्पष्ट या संकेत-रूप में भी कोई वर्णन नहीं और न कुरानशरीफ़ में इस बात पर जोर दिया गया है कि गाय या बैल[1] ही कुरबान किया जावे। बल्कि साफ़ साफ यह कहा गया है कि चार पैर वाले पशु की कुरवानी की जाय जिसका तात्पर्य यह है कि ऊँट, ऊंटनी, भैंसा,

[1] कुरानशरीफ़ में गाय या बैल के विषय में जो कुछ लिखा हुआ है उसको मैंने परिशिष्ट के रूप में दे दिया है उससे प्रत्येक व्यक्ति जान सकता है कि कुरानशरीफ़ में गाय या बैल को मारने या न मारने का क्या विधान है अथवा उसमें कितना जोर दिया गया है।

भैंस, बैल-गाय, भेड़ा-भेड़ी, बकरा-बकरी आदि पशु जिनको खुदा ने खाने के निमित्त बर्जित नहीं किया है उन्हीं की कुरबानी हो सकती है।

व लेकुल्ले उम्मतिन जअलना मन्सकन् लेयज् कुरु इस्मुल् लाहे अला मा रज़कहुम मिन वहीमतिल् अन्आमे।

(कुरान—सूरः हज्ज में रुकू ५ की आयत १)

और प्रत्येक समुदाय के लिये हम (अल्लाह) ने कुर-बानी नियुक्त की ताकि उन चार पगवाले पशु (जिन्हें मैंने) मनुष्यों को दे रखा है (उनको मारते समय) लोग अल्लाह का नाम लें।

नोटः—यहाँ उन पशुओं की ओर संकेत है जिनको खाने के लिये आज्ञा है।

कुरबानी के सम्बन्ध में कुरान में यह भी आया है कि पशुओं के मांस व खून खुदा को नहीं पहुँचा करते बल्कि मनुष्य की श्रद्धा-भक्ति खुदा को पहुँचा करती है।

लन् यनालल्लाहा लोहूमोहा व ला दिमाओहा व लाकिन यना लोहूत्तक्वा मिनकुम (कुरान-सूरः हज्ज में रुकू ५ की आयत ३)

अर्थ—खुदा तक न तो (कुरबानी के) मांस ही पहुँचते हैं और न इनके खून बल्कि उसके पास तक तुम्हारी श्रद्धा-भक्ति पहुँचा करती है।

निस्सन्देह यही भाव था जिसकी परीक्षा के निमित्त खुदा ने हजरत इब्राहीम को आज्ञा दी थी कि अपने पुत्र को खुदा के निमित्त कुरबान करें।

बलिदान का मुख्य स्थान

मक्का के निकट मना नामी स्थान में हजरत इब्राहीम साहब ने कुरबानी की थी। उसी स्थान पर हाजी लोग भी कुरबानी करते हैं। हज्ज के अवसर पर भूमण्डल के भिन्न-भिन्न स्थानों के मुसलमान आते हैं जिनकी संख्या कई हजार से अधिक हुआ करती है। इसलिये इस अवसर पर हजारों पशुओं का बलिदान होता है। सारा मांस खाया नहीं जा सकता। इस कारण बलिदान किये गये बहुत से पशु बड़े बड़े गड्ढों में डाल दिये जाते हैं और उन गड्ढों को मिट्टी से ढाँक दिया जाता है।

अरबी में हज्ज शब्द का अर्थ है—इरादा करना, किसी के पास बहुत आना-जाना। परन्तु एक विशेष काल में मक्का नगर में जाना और वहाँ की पवित्र मसजिद काबा में नियत कर्मकाण्ड के साथ ईश्वर-प्रार्थना व उपासना करने को हज्ज कहा जाता है। हजारों व्यक्ति भारत से भी प्रत्येक वर्ष हज्ज करने जाते हैं। ऐसे यात्रियों या यात्रा कर चुकने वालों को ही हाजी कहा जाता है। कुरबानी वास्तव में हज्ज का एक प्रधान अंग है। पर यह

कार्य उनके लिये भी लाभदायक माना जाता है जो हज्ज करने नहीं जाते। यही कारण है कि भारत में भी कुरबानियाँ हुआ करती हैं।

जो व्यक्ति हज्ज के लिये मक्का जाय, यदि उसे कुरबानी प्राप्त न हो अर्थात् वह कुरबानी न कर सके तो तीन दिनों का रोजा (व्रत) वहाँ रख ले और अपने घर लौट कर ७ दिन रोजा रक्खे—

फमन लम यजिद फस्यामो सलासते अय्यामिन फिल् हज्जे व सबअतिन इजा रजातुम।

(कुरान-सूर: बकर में रुकू २४ की आयत ८)

अर्थ—और जिसको (कुरबानी) प्राप्त न हो तो तीन रोजे हज्ज के दिनों में (रख ले) और सात जब लौट आवे।

अनेक भारतीय मुसलमान लेखकों का यह मत पाया जाता है कि कुरबानी प्रत्येक मुसलमान के लिये जरूरी नहीं है जो सम्पन्न हों केवल वही करें। सम्पन्न की व्याख्या यह की गई है कि जो अपनी आवश्यक वस्तुओं (अर्थात् रहने के मकान, पहिनने के कपड़े और घर की आवश्यक चीजों) के सिवा साढ़े सात तोला सोना अथवा साढ़े बावन तोला चाँदी का मालिक हो।

अब तक मैंने केवल भारत के ही अनेक मुसलमान लेखकों के लेखों में इस आशय की बात देखी है कि एक

बकरा या भेड़ा की कुरबानी का पुण्य केवल एक मनुष्य को, एक गाय या ऊँट की कुरबानी का फल ७ व्यक्तियों को मिलता है। पर स्पष्ट रहे कि उक्त प्रकार का भाव कुरान में कहीं नहीं है और न भारत से बाहर के किसी मुसलमान लेखक का लेख (उक्त आशय का) अब तक मुझे मिला है।

गाय और .कुरान

कुरान शरीफ में गौ की कुरबानी क्या आवश्यक बतलाई गई है ? खुदा को प्रसन्न करने के लिए (मुसलमानों के यहाँ) क्या यही मार्ग है कि वे लोग गाय अवश्य मारा करें ? क्या गो-मांस की प्रशंसा कुरान शरीफ में की गई है अथवा गो-मांस को स्वास्थ्य के निमित्त बहुत अच्छा बताया है जिसके कारण बहुतेरे मुसलमान लोग गाय मारा करते हैं ? इस प्रकार के प्रश्न बहुधा लोग मुझसे पूछा करते हैं। इसलिए मैंने उचित समझा कि .कुरान शरीफ में गाय के विषय में जो कुछ चर्चा हो, उसको यदि एक साथ एकत्र कर दिया जाय और सबके सम्मुख रख दिया जाय तो लोग स्वयं यह नतीजा निकाल लेंगे कि उक्त प्रकार के प्रश्नों का उत्तर कुरान से (जो कि समस्त मुसलमानों की दृष्टि में सर्वमान्य है) क्या मिलता है।

.कुरान के बाद जिन ग्रन्थों का आदर मुस्लिमजगत् में है वह 'हदीस' के नाम से विख्यात हैं किंतु मैं .कुरान के सिवा हदीस या किसी ग्रन्थ के आधार पर कुछ नहीं लिखना चाहता क्योंकि (.कुरान के सिवा) अन्य सारे ग्रन्थों को समस्त मुसलमान पूर्ण

रूप से ठीक नहीं मानते। उनके विषय में परस्पर बड़ा मतभेद है। परन्तु यह भी ज्ञात रहे कि कुरान में अनेक स्थान ऐसे भी हैं जहाँ इतिहास की शरण लिये बिना काम ही नहीं चल सकता क्योंकि केवल क़ुरान के ही शब्दों से पूरा अर्थ नहीं निकलता। ऐसी अवस्था में मुझे भी इतिहास की शरण लेनी पड़ी है। इसके सिवा यह भी जान लेना चाहिए कि गाय-सूचक शब्द क़ुरान की जिस आयत (वाक्य) में आया है मैंने उसके केवल थोड़े से ही भाग को देने में सन्तोष नहीं किया बल्कि उस स्थान से सम्बन्ध रखने वाले आगे-पीछे के पूरे वाक्य या वाक्यों को मैंने लिख दिया है ताकि लोग भली भाँति जान सकें कि क़ुरान में गाय के विषय में क्या चर्चा है।

अरबी भाषा में प्रायः 'बक़रतुन' अर्थात् 'बक़रः' शब्द गाय और 'बक़रुन' अर्थात् 'बक़र' शब्द बैल के लिए आता है। सबसे पहली बात यह है कि कुरान की ११४ सूरतों (अध्यायों) में से दूसरी सूरत (अध्याय) में समस्त क़ुरान का बारहवाँ भाग है। उस भाग का नाम ही 'सूरतुलबकरः' या 'सूरः बकर' अर्थात् गाय-विषयक सूरत (अध्याय) है क्योंकि उस अध्याय में गाय का वर्णन विशेष रूप से है। अस्तु, सबसे पहले कुरान के उसी अध्याय में गाय के विषय में यह आया है—

प्रथम स्थल

(वइज़ काला मूसा..........लअल्लाकुम ताक़लून)

भावार्थ—और जब मूसा* ने अपनी जातिवालों से कहा कि

---

* लगभग ५ हजार वर्ष बीते कि हज़रत मूसा साहब एक बड़े पैगम्बर हो चुके हैं। इनको न केवल मुसलमान ही बल्कि

निस्सन्देह अल्लाह तुमको आज्ञा देता है कि तुम एक गाय मारो। उन्होंने कहा कि क्या तुम हमसे हँसी करते हो ! मूसा ने कहा, मैं अल्लाह की शरण चाहता हूँ कि मैं अज्ञानी बनूँ।

उन्होंने कहा कि तू अपने पालनहार से हमारे निमित्त पूछ कि वह गाय कौन सी है। इस बात को वह स्पष्ट रूप से हमें बतला दे। मूसा ने कहा कि निस्सन्देह अल्लाह कहता है कि वह गाय ऐसी है कि न तो अभी बूढ़ी है और न अभी बछिया ही है। इन दोनों के बीच की आयुवाली है। अतः जो कुछ तुम्हें आज्ञा हुई है उसे पूरा करो।

उन्होंने कहा कि तू अपने पालनहार से हमारे निमित्त पूछ कि वह गाय किस रंग की है। मूसा ने कहा कि निस्सन्देह अल्लाह कहता है कि वह गाय पीली है और खूब पीली है यहाँ तक कि देखनेवालों को उसका रंग बहुत सुन्दर मालूम होता है।

उन्होंने कहा कि तू अपने पालनहार से हमारे निमित्त पूछ कि वह कौन सी है। इस बात को वह स्पष्ट रूप से बतला दे। क्योंकि हमको एक ही रंग की कई गाएँ प्रतीत होती हैं। और यदि अल्लाह ने चाहा तो हम निस्सन्देह ठीक मार्ग पर होंगे।

मूसा ने कहा कि निस्सन्देह अल्लाह कहता है कि वह एक गाय है न ऐसी सधी हुई है कि ज़मीन को जोतती है और न उससे खेती ही सींची जाती है। वह पूर्ण रूप से ठीक है। उसमें कोई धब्बा नहीं है। उन्होंने कहा कि ऐ मूसा ! तूने अब हमें

ईसाई व यहूदी लोग भी अपनाते हैं। इनका हाल 'क़िससुल अंबिया' नामी उर्दू किताब में विशेष रूप से है—लेखक।

ठीक ठीक बताया है। इस पर उन्होंने उसको ज़बह किया यद्यपि ऐसा करने के लिये वे तैयार न थे।

और जब तुमने एक व्यक्ति को मार डाला और उस व्यक्ति के लिये तुमने झगड़ा किया क्योंकि उसके घातक का ठीक पता तुम्हें नहीं था किन्तु अल्लाह उस बात को प्रकट करनेवाला है जिसको कि तुम छिपाते थे।

निदान हमने कहा कि उस मृतक को गाय के किसी टुकड़े से मारो। (ऐसा करने पर वह मृतक जी उठा।) इसी प्रकार अल्लाह मृतकों को जिलाता है और जिलावेगा। और अपने शक्ति के चिन्हों को दिखाता है ताकि (सब कुछ) तुम्हारी समझ में आवे ॥—सूरः बक़र, आयत ६६–७२

गाय क्यों बध कराई गई थी? इस बात की बाबत अनेक मुसलमान लेखक ही लिखते हैं कि एक यहूदी ने अपने एक सम्बन्धी को मार डाला था। कोई व्यक्ति कुछ पता न चला सके, इस कारण लाश को दूर रख आया। मृतक के मित्रों ने हज़रत मूसा साहब के समीप कुछ अन्य लोगों को दोषी ठहराया उन लोगों ने इन्कार किया। अपराधी का पता लगाने के लिये अल्लाह ने आज्ञा दी कि एक गाय मारी जाय। अतः गाय मारी गई। फिर उस गाय के एक भाग से मृतक को मारा। वह जी उठा और अपने घातक का पता देकर फिर मर गया।

क़ुरान में दूसरा स्थान (जहाँ गाय का वर्णन है) सूरतुल् अन्आम या सूरः अन्आम अर्थात् पशु-विषयक अध्याय है। यह क़ुरान में छठा सूरः (अध्याय) है। इसमें आया है—

द्वितीय स्थल

(व मिनल् अन्आमे...........कौमज़्ज़ालिमीन)

भावार्थ—और पशु दो प्रकार के हैं, एक वह जो लादने में समर्थ हैं और दूसरे जो छोटे-मोटे हैं। हे लोगो जो कुछ अल्लाह ने तुम्हें दिया है उसे खाओ। और शैतान का अनुकरण न करो क्योंकि वह निस्सन्देह खुले-खजाना तुम्हारा वैरी है।

आठ जोड़े अल्लाह ने पैदा किये हैं। भेड़ में से (एक भेड़ा व एक भेड़ी) दो, और बकरी में से (एक बकरा व एक बकरी) जो दो हैं। कह (हे मुहम्मद)* कि अल्लाह ने (तुम्हारे लिए) भेड़ा और बकरा को हराम किया है या भेड़ी और बकरी को या उस (बच्चा) को जो बकरी या भेड़ी के पेट में हो। यदि (लोगो !) तुम्हारी बात ठीक है तो उसे बताओ।

ऊँट में से (एक ऊँट व एक ऊँटनी) दो, और गौ में से (एक गाय व एक बैल) जो दो हैं। कह (हे मुहम्मद !) कि अल्लाह ने ऊँट और बैल को हराम किया है या ऊँटनी व गाय को या उस (बच्चा) को जो गाय या ऊँटनी के पेट में हो। क्या तुम साक्षी थे जब अल्लाह ने ऐसा किया था ? अतः उससे बढ़कर अत्याचारी और कौन है जो झूठी बात को अल्लाह के सिर मढ़ता है ताकि लोग बिना सोचे विचारे भटकें। सच तो यह है कि अल्लाह अत्याचारियों को ठीक मार्ग पर नहीं लाया करता।—

---

* क़ुरान हज़रत मुहम्मद साहब के द्वारा लोगों को मिला है। अतः क़ुरान के अनेक स्थानों में यह बात पाई जाती है कि जहाँ अल्लाह ने हज़रत मुहम्मद साहब से कहा है कि तुम अमुक बात लोगों से कह दो—लेखक

सूरः अनआम, आयत १४३-१४५

मुसलमानी धर्म के जन्म से पहले अरब में नाना प्रकार के टुटके प्रचलित थे। अतः अरब लोग भेड़, बकरी, ऊँट और गाय में से किसी अवस्था में किसी के नर को व किसी समय किसी की मादा को और किसी दशा में (उक्त पशुओं में से) किसी पशु के बच्चे को हलाल या हराम समझते थे। उनका ऐसा समझना उचित नहीं था। इस कारण उनके उक्त रीति व रवाज का ऊपर सर्वथा खण्डन है और उनके विचारों की निन्दा की गई है।

तृतीय स्थल

गत अध्याय में जहाँ गाय की चर्चा है उसके निकट ही फिर गाय का वर्णन इन शब्दों में है:—

(व अलल्लजीना हादू ....वइन्ना ल सादिकून)

भावार्थ—और जो लोग यहूदी हैं उन पर हमने (अल्लाह ने) प्रत्येक नाखूनवाले पशु को हराम किया है। और गाय व बकरी दोनों की चरबी हमने हराम की है किन्तु वह चरबी जो उनकी पीठ पर लगी हो अथवा अँतड़ियों पर या हड्डी से मिली हो, हमने उसको उनके लिए हराम नहीं किया। यह सजा हमने उन्हें उनके द्रोह के कारण दी है और निस्सन्देह हम सच्चे हैं।—

सूरः अनआम, आयत ४७

यहूदी लोग मिस्र में दास थे हजरत मूसा साहब के उद्योग से छूटे। किन्तु उन्होंने हजरत मूसा की आज्ञा का पालन न किया। इस पर खुदा ने आज्ञा दी कि यह सब एक काफी समय तक अपना जीवन जङ्गल में व्यतीत करें। ऐसी अवस्था में दूध-दही ऐसे

भोजन के हेतु और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के निमित्त पशु उनके लिए बड़े उपयोगी और आवश्यक थे। इस कारण अल्लाह ने पशु हराम कर दिये थे ताकि उपयोगी पशुओं को मारे जाने की नौबत ही न आवें।

क़ुरान शरीफ़ में बारहवाँ सूरः यूसुफ़ है जिसमें अन्तिम बार गौविषयक बातें और इसमें सन्देह नहीं कि गाय के विषय में अब

चतुर्थ स्थल

जो कुछ आवेगा वह गाय के मारने या खाने की बाबत नहीं है किन्तु मैं चाहता हूँ कि क़ुरान में गाय के विषय में चाहे किसी प्रकार का वर्णन हो, वह सब का सब लोगों के सम्मुख रख दिया जावे। इस कारण निम्नलिखित बातों को लिख रहा हूँ :—

(व कालल मलिको.................लअल्लहम् यालमून)

भावार्थ— मिस्र देश के बादशाह ने कहा कि मैंने स्वप्न में देखा कि सात मोटी गायें सात दुबली गायों को खाती हैं और सात हरी बालें सात सूखी को भी। हे दरबार वालो! मेरे स्वप्न को बताओ यदि तुम स्वप्न पर विचार कर सकते हो।

दरबारवालों ने उत्तर दिया कि यह खिन्न विचार हैं और हम स्वप्न के विचारने में समर्थ नहीं।

बादशाह का एक नौकर जो हजरत युसुफ साहब के साथ बन्दीखाना में था, जिसका स्वप्न हजरत यूसुफ ने ठीक-ठीक विचारा था, वह बादशाह के पास था। उसे हजरत यूसुफ साहब चिरकाल के बाद याद आये। उसने बादशाह से कहा कि आपको मैं स्वप्न का

ठीक अर्थ बता सकता हूँ। अतः आप मुझे बन्दीखाना में हजरत यूसुफ के पास जाने दीजिये जिन्होंने कि मेरा स्वप्न ठीक से विचारा था।

हे यूसुफ! तुम स्वप्न के विचारने में सच्चे हो। अपना मत इस स्वप्न के लिए प्रकट कीजिए कि सात मोटी गायें सात दुबली गायों को खाती हैं और सात हरी बालें सात सूखी बालों को भी। इसका ठीक अभिप्राय बताइए कि लोग समझ सकें।—सूरः यूसुफ, आयत ४३-४६

हजरत यूसुफ साहब का काल हजरत मूसा से भी कुछ पहले का है। यह भी एक पैगम्बर थे। यह बड़े सुन्दर थे। इनके भाइयों ने इन्हें जंगल के कुएँ में डाला पर इनको एक सौदागर कुएँ से निकालकर मिस्र में ले गया। वहाँ वह बादशाह के सचिव के दास बने। सचिव की स्त्री ने इन पर झूठा कलंक लगाया। यह जेल में डाले गये। वहाँ बादशाह के दो कैदी नौकरों का स्वप्न आपने बहुत ही ठीक विचारा। उनमें एक बादशाह का फिर नौकर बना।

बादशाह ने उक्त स्वप्न देखा। कोई विचार न सका। नौकर जो कैद से छूटकर आया था उसने हजरत यूसुफ की बाबत और अपने स्वप्न की बाबत बादशाह को बताया। इस पर बादशाह ने नौकर को हजरत यूसुफ साहब के पास भेजा। उन्होंने स्वप्न का ठीक ठीक अभिप्राय बताया। बादशाह बड़ा प्रसन्न हुआ और अन्त में एक दिन यह नौबत पहुँची कि वह स्वयं बादशाह हुए। इनका भी हाल उर्दू के "किससुल अंबिया" में विस्तारपूर्वक है।

जानना चाहिए :—

(१) बकर (بقر) शब्द का अर्थ है—बैल। बकर श०

चेतावनी

का समस्त कुरान में तीन बार प्रयोग हुआ है (क) दूसरी सूरत बकर की आयत ७० में (ख) छठी सूरत अन्आम की आयत १४५ और १४७ में एक एक बार।

(२) बकरः या बकरत (بقرة) का अर्थ है—गाय (अथव बैल)। बकरः शब्द शमस्त कुरान में चार वार आया है। दूसर सूरत बकर की आयत ६७,६८,६९ और ७१ में से प्रत्येक मे एक बार।

(३) बकरात (بقرات) शब्द बकरः का बहुवचन है अर्थ है—गायें। बारहवीं सूरत यूसुफ की आयत ४३ व ४६ में एक एक बार अर्थात् समस्त क़ुरान में बकरात शब्द दो बार आया है।

क़ुरान में गाय के विषय में क्या है—इस बात का ज्ञान उक्त शब्दों के सहारे अँगरेजी अनुवादों द्वारा भी सुगमता के साथ जाना जा सकता है।

किसी-किसी क़ुरान या उसके अनुवाद में आयतों की संख्या गणना के अनुसार कुछ भिन्न ठहरती है। ऐसी दशा में संभव है कि आयतों की जो संख्यायें ऊपर लिखी गई हैं वह एक या दो अधिक या कम हों।

प्रकाशक—महेशप्रसाद मौलवी आलिम फाजिल
हिंदू यूनीवर्सिटी बनारस
श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी काशी।

ी आलिम फाजिल महेशप्रसाद कृत कुछ

जा महर्षि दयानन्द सरस्वती ॥।), महर्षि-जीवन-दर्शक ॥

ृयानन्द कहाँ और कब ।), दयानन्द काल में रेल मार्ग -

सैयद अहमद खाँ और श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी

दयानन्द और कुरान ।), गाय और कुरान ~), बकरईद

सत्यार्थप्रकाश)॥, सत्यार्थप्रकाश पर विचार ~), सत्या

भ्रम)॥, विद्यामंदिर ।~) . मनोरञ्जक हिसाब ।~), आर्य

आवर्त अर्थात् श्री स्वामी जी के भ्रमण का चित्र ।=),

ईसाई ~), The Immortal Satyarth Prakash

अन्य लोगों की कुछ पुस्तकें

उर्दू का रहस्य ॥।), मुसलमान २॥), कुआंन में हि

इस्लाम धर्म ।=), तसव्वुफ अथवा सूफीमत ३), भारत

नीति व सभ्यता ६॥।), भारत का इतिहास (हिन्दू-काल

हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता ६), स्त्रियों का वेदाध्य

वैदिक कर्मकांड में अधिकार १।), शांकर-भाष्यालोचन ५)

क्यों ? (श्री कमलादेवी कृत) ५) जीवात्मा ४)

१. हमारे यहाँ से अन्य पुस्तकें भी मँगाई जा सकती

२. दस रुपये से अधिक की पुस्तकों के मँगाने वाल

से कम पाँच रुपया पेशगी आना चाहिए।

विनीत —

मैनेजर आलिम फाजिल बुकडिपो, इलाहाब